कौल-कल्पतरु

गणेश

वर्ष ६०

अङ्क ४-५

विविध आयोजन

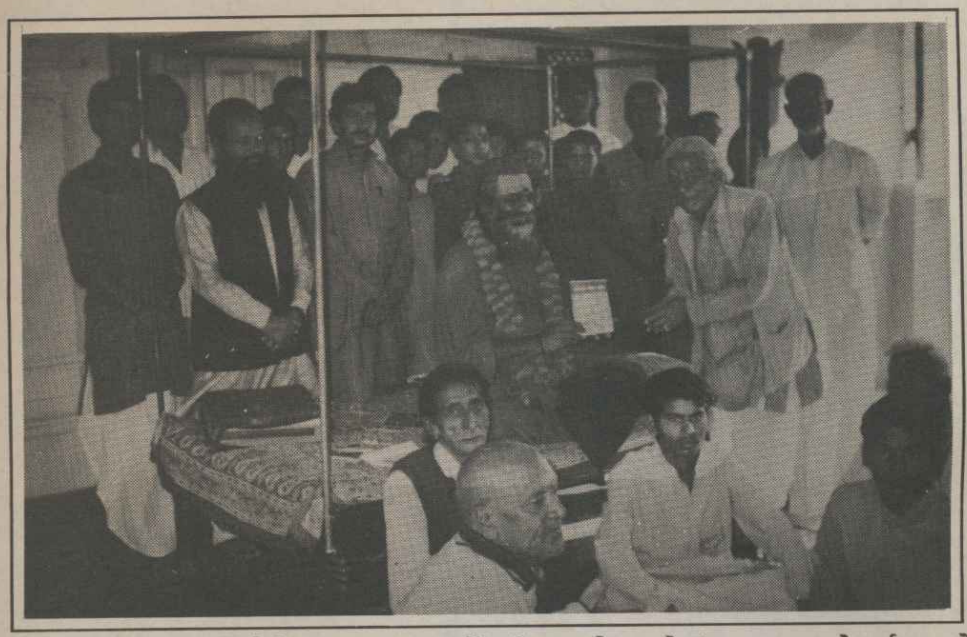

'श्रीशङ्कराचार्य आश्रम', अलोपीबाग, प्रयाग-राज में 'श्रीबटुक भैरव-स्तोत्र'-पुस्तक का लोकार्पण करते हुए ज्योतिष्पीठाधीश्वर श्रीस्वामी वासुदेवानन्द सरस्वती जी महाराज।

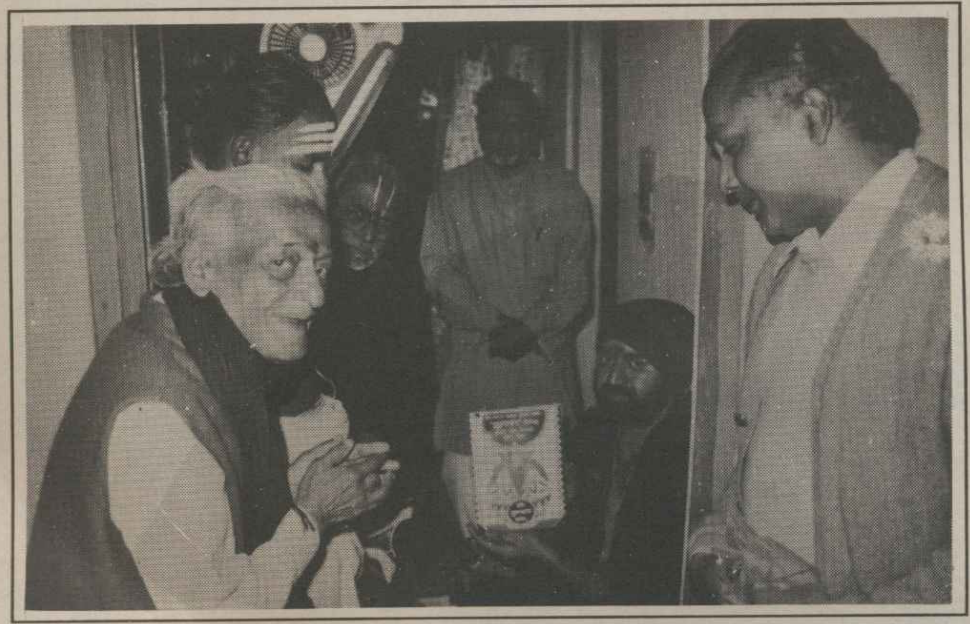

'श्रीशिव महिम्न-स्तोत्र' का लोकार्पण करते हुए जगद्-गुरु शङ्कराचार्य श्रीविजयेन्द्र सरस्वती जी महाराज।

■ **मानद सम्पादक**
रमादत्त शुक्ल
■ **सम्पादक**
ऋतशील शर्मा
■ **अनुदान**
वार्षिक : १०० रु०
आजीवन : १००० रु०
अनुदान **धनादेश** या **बैङ्क ड्राफ्ट** द्वारा **'कौल-कल्पतरु'** चण्डी के नाम से **'चण्डी-कार्यालय', अलोपीबाग, प्रयाग-राज-२११००६** के पते पर कृपया भेजें।
■ **प्रकाशक :**
परा-वाणी आध्यात्मिक शोध-संस्थान, चण्डी-धाम, प्रयाग, ✆ ५०२७८३
■ **अक्षर-संयोजन :**
ए.एस. लेजर प्वाइण्ट
कटरा, प्रयाग, फोन : ६०५७६५

'चण्डी' पत्रिका का सदस्य बनकर
उपयोगी पुस्तकें
रियायती मूल्य पर प्राप्त करें !

परशुराम-कल्प-सूत्रम्
(हिन्दी अर्थ सहित)
सुन्दर सजिल्द, २७५ पृष्ठ
मूल्य २८०-०० रु०
रियायती मूल्य २२०-००

★

सार्थ सौन्दर्य-लहरी
मूल्य ७५-०० रु०
रियायती मूल्य ५०-००

'कौल-कल्पतरु' चण्डी
वर्ष ६०
आषाढ़-श्रावण, 'जय'- सं० २०५८ वि०
जुलाई-अगस्त, २००१

इस अङ्क में

■ महर्षि अरविन्द के उपदेश	६०
■ विश्व-जीवन का प्रगटीकरण	६१
■ श्रीदुण्डि-राज-स्तोत्रम्	६५
■ सर्व-देव-कृत श्रीगणेश-स्तुति	१०१
■ नमामि त्वं गणाधिप!	१०३
■ 'प्राण' का रहस्य	१०४
■ नव-ग्रह 'वार'-व्रत-विधि	१०५
■ श्रीअनन्त देवता की साधना	१०७
■ 'सौन्दर्य-लहरी' (सम-श्लोकी अनुवाद)	१०६
■ ग्रह-मातृका-न्यास	११३
■ नक्षत्र-मातृका-न्यास	११४
■ राशि-मातृका-न्यास	११४
■ श्रीदुर्गा-पूजा की विशिष्ट विधि	११५
■ साधक का संवाद	१३३
■ भारतीय ज्योतिष विज्ञान	१४१

विशेष सूचना

मई, २००१ से **'चण्डी'**-मासिक-पत्रिका का प्रकाशन मासिक के स्थान पर **द्वै-मासिक** हो गया है। **मई-जून, २००१ संयुक्त अङ्क** के बाद **जुलाई-अगस्त, २००१ का संयुक्त अङ्क** भेजा रहा है।

सितम्बर-अक्टूबर, २००१ का **संयुक्त अङ्क —'श्रीदुर्गा अङ्क'** होगा। यह सभी सदस्यों की सेवा में **३ अक्टूबर से १० अक्टूबर, २००१** तक भेजा जाएगा।

जिन बन्धुओं ने **'चण्डी' वर्ष ६०** हेतु अपना **वार्षिक अनुदान १००/- मनीआर्डर द्वारा** नहीं भेजा है, उनकी सेवा में **५०/- + ५०/- + २०/- की ३ वी०पी०** जाएँगी। अतः कृपया ध्यान देंगे और वी०पी० पहुँचने पर स्वीकार करने की कृपा करेंगे।

विशेषाङ्क— 'मन्त्रात्मक सप्तशती' (पहला भाग) सभी विशेषाङ्क मँगानेवाले सदस्यों को भेजा गया है। शीघ्र ही दूसरा विशेषाङ्क— **मन्त्रात्मक सप्तशती (भाग २)** वी०पी० द्वारा जाएगा। अन्य जो बन्धु इसे मँगाना चाहते हों, वे कृपया लिखेंगे। हम उन्हें भी भेज देंगे।

महर्षि अरविन्द की जयन्ती (१५ अगस्त, २००१) के पावन अवसर पर :

उपदेश

- ☐ वह **शक्ति** जिसे हम **'माता'** कह कर पूजते हैं; **दिव्य चिन्मयी शक्ति** है, जो अखिल विश्व की अधिष्ठात्री है।
- ☐ **'माता'**—परम पुरुष **(पर-ब्रह्म)** की **'चिति'** और **'शक्ति'** हैं। वे जो कुछ सर्जन करती हैं, उस सबके बहुत ऊपर स्थित हैं।
- ☐ **'माता'**—केवल ऊपर से ही **विश्व का शासन** नहीं करतीं, अपितु वे निम्न-तर **त्रि-विध जगत्** के भीतर भी अवतरित होती हैं।
- ☐ हमारे लिए एक-मात्र फल है—**'भगवती माता की प्रसन्नता** और **माता के कार्य की सिद्धि।'**
- ☐ जीवन सर्वदा ऐसे बिताओ मानो कि **'भगवती माता'** हमें देख रही हों। ऐसा कोई भी कार्य न करो; ऐसा कुछ भी सोचने व अनुभव करने की चेष्टा मत करो, जो **'माता'** की उपस्थिति के अयोग्य हो।
- ☐ साधक के जीवन में **निजी प्रयत्न** और **व्यक्तिगत इच्छा** को लगातार कम होना चाहिए। **'माता-शक्ति'** का साधक पर अधिकार निरन्तर बढ़ना चाहिए, जिससे वह हमें **दिव्य प्रयोजन** के लिए अधिकाधिक उपयोग में लाती जाएँ।
- ☐ **सच्चा साधक** स्वयं विचार, इच्छा, कर्म तथा अनुभव नहीं करता, अपितु विचार, इच्छा, कर्म तथा अनुभव—उसके 'शरीर'-रूपी संस्थान में घटित होते हैं।
- ☐ जीवन में सभी प्रकार के भय, सङ्कट और विनाश के प्रति दो ही बातें आवश्यक हैं और ये दोनों ऐसी हैं, जो सदा एक साथ रहती हैं—(१) **भगवती माता की कृपा** एवं (२) **साधक की अन्तः-स्थिति,** जो श्रद्धा, निष्ठा तथा समर्पण से गठित हो।

'ऋषि'

उच्चतर आध्यात्मिक अनुभव और **ज्ञान** से सम्पन्न व्यक्ति ही **'ऋषि'** कहलाता था। राजा भी उसका सम्मान करता और उससे परामर्श लेता था। सामाजिक विकास की तत्कालीन तरल अवस्था में केवल वही नए मूल-भूत विचारों की अभिव्यक्ति में महत्त्व-पूर्ण भाग लेने के योग्य था और लोगों के सामाजिक-धार्मिक विचारों तथा रीति-रिवाजों में सीधे तौर पर तुरन्त परिवर्तन कर सकता था।

ऋषि का यह कर्तव्य था कि वह जाति के मन पर संस्कारों को दृढ़तया अङ्कित करे और जनता के जीवन को **आध्यात्मिक** एवं **धार्मिक भावना** पर आधारित **सभ्यता के सु-गठित आदर्शों एवं मार्मिक रूपों** में ढाल दे।

आधुनिक समय के सन्दर्भ में मोक्ष का सच्चा मार्ग :

विश्व-जीवन का प्रगटीकरण

(गुप्तावतार बाबाश्री के प्रवचनों के आधार पर)

❖ पं०रमाशङ्कर पण्ड्या

१ धर्म, २ अर्थ, ३ काम और **४ मोक्ष**—चारों प्रकृति की क्रियाएँ हैं। इन्हें न समझ कर जो इनके पीछे पड़ता है, उनका उसे अजीर्ण हो जाता है और ये चारों माया के शस्त्र बनकर व्यक्ति के लिए संहारक हो जाते हैं। कोई कामी, कोई कञ्जूस अथवा कोई श्रेष्ठ धर्मान्ध और कोई आत्म-घातवादी बन जाता है। इन चारों का सम-तुलत्व तब तक नहीं मिलता, जब तक चारों का स्फुरण एक बिन्दु पर से, सम्पूर्ण अपने वश में नहीं होता। **'काम'** न हो, तो सृष्टि न हो। **'अर्थ'** न हो, तो प्रकृति निरर्थक हो जाए। **'धर्म'** न हो, तो अनियमितता हो और **'बन्ध व मोक्ष'** न हो, तो इस अनन्त विश्व का खर्च न चले और न ही क्या, कब व कैसे करना, इसकी **चित्-प्रेरणा** ही हो। **१ धर्म, २ अर्थ, ३ काम** और **४ मोक्ष**—इन चारों के मूल में, **'स्पन्द का स्रोत'** है, जिसमें से **'काल'**—बाल-रूप से झरता है।

वैज्ञानिकों को **'मोक्ष'** दिखाई दिया—**'अणु'** में। उसकी फोटो भी ली गई। भू-तल से १०० मील की ऊँचाई पर गुब्बारे में कैमरा भेजा गया और **वैश्विक किरणों** की सक्रियता **(कॉस्मिक रेडिएशन)** के बने हुए शिकार-रूपी अणुओं का चित्र प्राप्त हुआ—अणु टूटते हुए दिखाई दिए और उनमें से शक्ति **(लिबरेटेड कॉस्मिक इनर्जी)** की वर्षा भू पर होती हुई दिखाई दी। इस प्रकार **'मोक्ष'** की पहली गति **ऊर्ध्व से अधः** की दिशा में होती है। **'अणु बम'** के विस्फोट में भी **'अणु-शक्ति का 'मोक्ष'** होता है, परन्तु यह **ऊर्ध्व दिशा** में होकर व्यापक हो जाता है। यह **'मोक्ष'** की दूसरी **'ऊर्ध्व गति'** है।

'मोक्ष' की तीसरी गति **तिर्यक् दिशा** की ओर होती है। इसमें गोली छोड़कर हम गोली या तीर का **'मोक्ष'** करते हैं। इसमें शिकार होता है **'जीव'**, जो आपत्ति का शिकार बनता है। चौथी गति **शक्ति के मोक्ष** की है—विकेन्द्रीकरण। एक केन्द्र में से चारों तरफ घूमती हुई शक्ति छूटती है। यह कली के खिलने में दिखाई देता है। एक पाँचवीं गति भी दिखाई देती है—**'बीज'** में। यदि शक्ति का मोक्ष **'बीज'** में से न हो, तो **'बीज'** उग नहीं सकता। अंकुरण का मूल कारण है— **'बीज'** की **सञ्चित शक्ति का मोक्ष**। इसी मोक्ष का आश्रय लेकर हमारा **'सूर्य'-मण्डल** व **'ब्रह्माण्ड'** बन जाते हैं।

हमारे शरीर में क्षण-क्षण **'मोक्ष'** होता है। नहीं तो साँस लेने, बोलने, खाने, चलने या सोचने की शक्ति कहाँ से आती है? अणु-पेशियों (सेल्स) के टूटने से जहाँ भी जीवन दिखाई देता है, यही गुण पाया जाता है। समष्टि के लिए **व्यष्टि की 'बलि'**, देह को जिलाने

के लिए **अणु-पेशियों की 'बलि'** —इसी न्याय से **राष्ट्र, समाज** या **देश** अपने उत्थान के लिए **व्यक्ति-गत शान्ति व सिद्धि की 'बलि'** माँगते है।

शक्ति तीन प्रकार से पाई जाती है—१ **काइनेटिक इनर्जी (गति), २ डाइनेमिक (क्रिया)** और ३ **पोटेन्शल (बीज)**। **'बीज'** में से गति मुक्त होकर **क्रिया** व **गति** के द्वारा प्रवाह में आती है। तब परिणमन हमें दिखाई देता है और उसे हम **'काल'** कहते हैं। इस सृष्टि-कर जीवन-प्रद **'मोक्ष'** में से बचने के लिए दूसरे ऐसे **'मोक्ष'** की कल्पना की गई, जहाँ **'काल'** न हो—परन्तु ऐसा करने का परिणाम यह हुआ कि **'काल'** हमारी भूल-भरी संस्कृति को खा गया।

'अविद्या' का अध्ययन कर, **'विद्या'** में उसे पचाए बिना जीवन सम्भव नहीं। दोनों का युक्त समतुलत्व जानना, उसे चाहना व प्राप्त करना—यही **'योग-मार्ग'** है। प्रकृति में **'विद्या'** और **'अविद्या'** दोनों सदैव युक्त-रूप में ही पाई जाती हैं। इसीलिए वह **'योग-गम्या'** है। भगवान् ने हमें दो हाथ, दो पैर और दो आँखें आदि सब दो-दो दिए हैं। वैसे ही **स्व-भाव भी द्वित्व-मय** है। **'मोक्ष-वादी'** कहते हैं कि **अस्तित्व एक** है, **द्वित्व भ्रम** है। इसलिए अपनी एक आँख फोड़ डालो, एक हाथ, एक पाँव काट डालो, आसन पर ही बैठे-बैठे जीवन व्यतीत करो! **'परिश्रम'** तो एक रोग है, इसका गला घोंट डालो और तारीफ तो यह है कि रास्ता बताते हुए कहते हैं कि **'ब्रह्म'** निशाना है, **'आत्मा'** तीर है और **'प्रणव'** धनुष है—अ-प्रमाद से मारो, तीर तन्मय हो जाएंगा!!

वाह रे जबर्दस्ती! क्या कभी शर भी तन्मय आज तक हुआ है? शर तो चुभकर शिकार करता है—खबरदार! शर कभी स्वयं शिकार नहीं बनता। **'मोक्ष-मार्गी'** हमें सिखाते हैं कि स्वयं अपने **अस्तित्व को लय और एकता का शिकार** बना डालो। यह **प्रकृति के नियम** के विरुद्ध है—**अस्तित्व 'विकास' करने के लिए है, 'लय' करने के लिए नहीं—जियो! खूब जियो, अच्छा जियो। जाग्रत जीवन जगाकर दूसरों को भी जगाओ— जिलाओ।**

यहाँ प्रश्न उठता है कि **दुःख** का क्या हो? यह सच है कि **दुःख** सबको होता है, परन्तु दुःख ही तो **'विकास का कारण'** है। **'विकास'** मुफ्त में नहीं होता और एक सरीखा दुःख तो कभी रहता भी नहीं। दुःख के बाद फिर सुख अवश्य आएगा, परन्तु आया-गया सुख-दुःख हमारे किस काम का? **सुख की भीख** माँगने के लिए ही हरामखोरी कर मनुष्य ने नाना प्रकार से **ईश्वर की कल्पना** कर मुफ्तखोरी में वृद्धि की है। मेहनत करके फल में **ईश्वर** को नहीं पाया, इसी कारण हमारी **अधो-गति** हुई। **'माला'** हाथ में उठाई और लगे अपनी ही कामना का **'जप'** करने!

प्रकृति में **धूप** व **छाया** दोनों एक साथ होती हैं। **छाया** को अँधेरा **(माया)** समझ कर यदि त्याग करना है, तो रेगिस्तान में जाइए। वहाँ न **छाया** है, न **जीवन। मृत्यु** मात्र है—उसे सुख-परमानन्द-लय नहीं, ब्रह्म-लय मान लेना! **प्रकाश-रूपी विद्या** चाहिए, तो **अविद्या का अध्ययन** करो— पचाओ।

'योग' अपने से किया जाता है, दूसरे से नहीं, भले वह **'ब्रह्म'** ही क्यों न हो। दूसरे से **'योग'** करने से **'पराधीनता'** जागती है और भीख माँगने की इच्छा। इसमें **जीवन** नहीं मिलता। **'योग'** एक **विज्ञान** व **कला** है, जिसके द्वारा अपने **अस्तित्व का सच्चा निदर्शन** होता है। उसके द्वारा अपने अस्तित्व का गला घोंट कर मार डालने का प्रयत्न करना उसका दुरुपयोग करना है। कोई-कोई यह पूछ बैठते हैं कि यदि जीवन **'मोक्ष'** के लिए नहीं, तो फिर है किसलिए? यह तो वैसा ही प्रश्न हुआ कि यदि पैसा तालाब में फेंकने के लिए नहीं, तो किसलिए है? अरे, पैसा तो खर्च करने के लिए होता है। **अपनी व पराई आवश्यकता की पूर्ति** के लिए उसे खर्च किया जाता है और **युक्त खर्च** क्या है? यह सीखने को मिलता है और यह भी कि **प्रकृति** की **अनन्त सृष्टि का खर्च** कैसे पूरा होता होगा। उसे **प्रकृति** कहाँ से व कैसे कमाती होगी? उसमें कितना परिश्रम पड़ता होगा? वह **वैश्विक परिश्रम (कॉस्मिक लेबर)** क्या होगा और हममें वह कैसे जाग सकता है? हम **'विश्व के मजदूर'**, कब व कैसे बन सकते हैं?

इसी प्रकार **जीवन— जीने के लिए** है। **युक्त, दृढ़** और **जाग्रत जीवन** अन्य की सहायता कर, सेवा-भाव से **विश्व-जीवन** को पहचान कर, उसे अपने में व्यक्त करने का प्रयत्न करता है और **'विश्व-सेवा'** में लग जाता है—उस जीवन को प्रकृति खा नहीं जाती, पोसती है। **प्रकृति** खा जाती है, मुफ्त-खोर आनन्द खोजनेवाले जीवन को। पाश्चात्य देशों में यह सत्य सुविख्यात है कि **जीवन अपने ही अर्थात् जीवन के लिए** ही है। वह अपना ही अन्त अर्थात् अनन्त है **(लाइफ इज़ ऐन एण्ड इन इटसेल्फ)**। पर के लिए जीवन—यह **'दासत्व'** है। यदि **देश** या **विश्व** को अपने से **'पर'** समझ कर कुछ **त्याग** किया या **बलि** दी जाए, तो वह **'दासत्व'** होगा। उसे अपना समझकर **बलि** देने से ही **'विकास'** हो सकता है। यही **'सच्ची स्वतन्त्रता का मूल'** है। समय-समय पर **हिटलर** आदि जैसे राजाओं ने देश के लिए **हठात् बलि** कराई, जिससे कभी-कभी थोड़े समय के लिए यदि **देश का उत्थान** हुआ भी, तो फिर पतन हुआ। **प्रकृति** वही बलि स्वीकार करती है, जिसमें **'स्वात्म-निवेदन'** हो।

'विश्व-सेवा' के भाव से **'आत्म-निवेदन-बलि'**—यही **'मोक्ष' का सच्चा मार्ग** है, जो **'विश्व-जीवन'** में ले जाने का मार्ग व्यक्ति के लिए खोलकर उसे **'अमर'** बनाता है। **'मोक्ष'** का थोड़ा-बहुत रहस्य हमें अर्थ-शास्त्र से भी प्राप्त हो सकता है। **'प्रकृति'** में कोई भी क्रिया अथवा गति बिना खर्च के लिए नहीं होती। 'प्रकृति' में मुफ्त में कुछ नहीं होता। समुद्र में लहरों का उठना, तूफान का आना, भूकम्प, ज्वालामुखी, वर्षा आदि सबका खर्च **'प्रकृति'** देती है। यह उसी प्रकार होता है, जैसे हमारा उठना-बैठना, बोलना, सोचना इत्यादि। हम इन सब क्रियाओं का खर्च अपने शरीर में से देते हैं। अपने में से खर्च करना और उसे फिर भरना, यही **जीवन की निशानी** है। खर्च से डरना —यह एक प्रकार की **मृत्यु-भीति** है, जो हमारे **जीवन की सीमा** बनाकर हम पर **आवरण** डाल देती है। भूल-वश हम ऐसा सोचते हैं कि **प्रकृति** में ये सब क्रियाएँ मुफ्त हुआ करती हैं।

प्रकृति को आज तक अधिकतर दो दृष्टियों से ही देखा गया है—

१ **मूड़ीवादी दृष्टि**—इस दृष्टि के लोगों ने सोचा कि यहाँ तो बड़ा अन्धेर है। जिसके हाथ जो लगा, वही उसका हो गया। वृक्ष में फल लगा, जो तोड़े, उसका हो गया। सोने की खदान जो खोज

निकाले, उसकी हो गई। वैसे ही जो खेत का स्वामी, वही खेती का स्वामी!

२ **शक्ति-वादी दृष्टि**—इस दृष्टि के लोगों ने सोचा कि इस विश्व का खर्च चलाने का पैसा **भगवान्** के पास नहीं हो सकता। दूसरे को श्री देने से तो उसके बदले में कुछ मिलता है—भगवान् किसके पास खरीदने जाएँ? इसलिए **'श्री'—विश्व का मूल नहीं, 'शक्ति' ही इसका मूल** है। शरीर की अणु-पेशी टूटकर शरीर की क्रिया होती है—स्फूर्ति व शक्ति प्रगट होती है। तो विश्व में भी **भगवान्** कुछ लय कर अपने आप में से **'शक्ति'** उत्पन्न करते होंगे और इस विश्व को चलाते होंगे। चलो, इस **'शक्ति'** को ही अपने में प्रगट किया जाए, माँगने की जरूरत नहीं।

शक्ति-वादी भिखमङ्गे नहीं हुए क्योंकि भीख माँगने से **'शक्ति का ह्रास'** होता है, परन्तु उनको दूसरी आपत्ति ने सताया। **'शक्ति का उपयोग'** दूसरे को दबाने और नाना प्रकार के **सिद्धि**-रूप खिलौनों के खेलने में किया गया। परिणाम यह हुआ कि **'शक्ति'** प्राप्त कर; उसे अपनी **'शक्ति'** मान, अपनी ही **'शक्ति'** में कैद हो गए। **'विश्व-शक्ति'** को पहचान न सके क्योंकि **'शक्ति की पहिचान'** उसके **युक्त खर्च** में ही होती है। वह **युक्त खर्च, विश्व-सञ्चालन** ही हो सकता है, **'सिद्धि-भोग'** नहीं।

आज हम विश्व में एक वृहत् स्तर पर **तीसरी दृष्टि का उदय** भी देख रहे हैं। वह पूर्ण रूप से अभी प्रगट नहीं हुई है। यह है 'परिश्रम-दृष्टि'—

३ **परिश्रम दृष्टि**—अर्थात् यह सम्पूर्ण विश्व, **'प्रभु'** ने अपने अनन्त **'युक्त परिश्रम'** को प्रगट करने के लिए बनाया है। **'प्रभु'** आलसी नहीं है। वह बैठे-बैठे आनन्द नहीं लेता। **'प्रभु का परिश्रम'** अचूक है—जरा सी भी भूल हो, तो कई ब्रह्माण्डों में प्रलय हो जाए, ग्रह टकरा जाएँ। **'प्रभु का परिश्रम'** सतत है। **'प्रभु'** कभी थकता नहीं, सदैव सजग रहता है। वह सो जाए, तो विश्व चौपट हो जाए। **'प्रभु के परिश्रम'** में **'सेवा'-भाव** है, **स्वामित्व का भाव** नहीं है। इस प्रकार **'प्रभु' सच्चा 'विश्व-सेवक'** है, सबका पूरा करनेवाला है। उसके परिश्रम में समत्व है, छोटा-बड़ा, ऊँच-नीच नहीं है। **महा-परिश्रमी, महा-भैरव-स्वभाववाले 'प्रभु' के परिश्रम का विस्तार ही विश्व** है। इसे हम **'परिश्रम'**-द्वारा ही समझ सकते हैं। दुःख से छूटना है, तो **'परिश्रम'** करो। न **भीख** माँगो, न **शक्ति के खिलौने** खेलो। **'विश्व-जीवन'** को **'परिश्रम'**-द्वारा अपने में प्रकट करो और **'विश्व-सेवा'** में लग जाओ। ऐसा करने से अपने **संकुचित स्वार्थ** से छूटकर **वृहत् स्वार्थ** में गति प्राप्त होगी। यही **सच्चा 'मुक्त जीवन'** है। यह ऐसा **'मोक्ष'** है, जहाँ अधिक **'परिश्रम'** व **'जीवन'** दोनों मिलते हैं।

क्या हम आशा रख सकते हैं कि **भारत के मोक्षार्थी** उक्त **'विश्व-परिश्रम'** को **'प्रभु का स्वरूप'** पहचान कर, **'विश्व-सेवा'** को अपना आदर्श बनाएँगे? **सम्राट, राजा, जमींदार, बड़े मुड़ीवान**—सबको **काल** खाता जा रहा है। आसन पर बैठनेवाले **तपस्वी** या **महन्त** की तपो-श्री को भी **काल** छोड़ेगा नहीं। अतः **'तपो-श्री'** समाप्त हो जाए, उसके पहले देश के चरणों में **'सिद्धि'** का दान कर डालो और **'देश-सेवा'** में लग जाओ।

* * *

श्रीगणेश-स्तोत्र-संग्रह

(१)

श्रीढुण्ढि-राज-स्तोत्रम्

।।पूर्व-पीठिका— ईश्वर उवाच।।

विश्वेशो विश्वया सार्धं, मया च मुनि-सत्तम!
महा-शाख-विशाखाभ्यां, नन्दि-भृङ्गि-पुरो-गमः।।१
नैगमेयेन सहितो, रुद्रैः सर्वत्र संवृतः।
देवर्षिभिः समायुक्तः, सनकाद्यैरभिष्टुतः।।२
समस्तायतनाधीशैः, दिक् - पालैरभिनन्दितः।
तीर्थैर्दर्शित - तीर्थश्च, गन्धर्वैर्गीत - मङ्गलः।।३
कृत - पूजोप्सरोभिश्च, नृत्य - हस्तक-पल्लवैः।
वियत्यनाहतैर्वाद्यैः, समन्तादनुमोदितः।।४
ऋषीणां ब्रह्म - निर्घोषैर्बधिरी-कृत-दिङ्-मुखः।
कृत - स्तुतिश्चारणौघैर्विमानैरभितो वृतः।।५
त्रिविष्टप - वधू - मुष्टि - भ्रष्टैर्लाजैरितस्ततः।
अभिवृष्टो महा - देवः, सम्प्रहृष्ट - तनूरुहः।।६
दत्त - माल्योपहारश्च, बहु - विद्या-धरी-गणैः।
यक्ष - गुह्यक - सिद्धैश्च, खेचरैरभिनन्दितः।।७
कृत - प्रवेश-शकुनो, मृगैः शकुनिभिः पुरः।
किन्नरीभिः प्रहृष्टास्यै, किन्नरैरुप - वर्णितः।।८
विष्णुना च महा-लक्ष्म्या, ब्रह्मणा विश्व-कर्मणा।
नन्दि - नाथ - गणेशेन, आविष्कृत-महोत्सवः।।९
नागाङ्गनाभिः परितः, कृत-नीराजना-विधिः।
प्रविवेश महा - देवः, पुरीं वाराणसीं शुभाम्।।१०
पश्यतां सर्व - देवानामवरुह्य वृषेन्द्रतः।
परिष्वज्य गणाधीशं, प्रोवाच वृषभ - ध्वजः।।११
यदहं प्राप्तवानस्मि, पुरीं वाराणसीं शुभाम्।
मयाऽप्यतीव-दुष्प्राप्यां, स प्रसादोऽस्य वै शिशोः।।१२
यद्-दुष्प्रसाध्यं हि पितुरपि त्रि - जगती-तले।
तत्-सूनुना सु-साध्यं स्यादत्र दृष्टान्तता मयि।।१३
अनेन गज - वक्त्रेण, स्व - बुद्धि-विभवैरिह।
काशी-प्राप्तिः यथा मे स्यात्, तथा किञ्चिदनुष्ठितम्।।१४
पुत्रवानहमेवाऽस्मि, यच्च मे चिर - चिन्तितम्।
स्व-पौरुषेण कृतवानभिलाषं कर - स्थितम्।।१५
इत्युक्त्वा त्रि-पुरी - हर्ता, पुरुहूतादिभिः स्तुतः।
परितुष्टाव संहृष्टः, स्पष्टगीर्भिर्गजाननम्।।१६

।।मूल स्तोत्र—भगवान् श्रीनीलकण्ठ उवाच।।

जय विघ्न - कृतामाद्य, भक्त - निर्विघ्न-कारक!
अविघ्न - विघ्न - शमन - महा-विघ्नैक-विघ्न-कृत्!।।१
जय सर्व - गणाधीश, जय सर्व-गणाग्रणीः!
गण - प्रणत - पादाब्ज - गणनातीत-सद्-गुण!।।२
जय सर्वग सर्वेश, सर्व - बुद्ध्येक-शेवधे!
सर्व - माया - प्रपञ्चज्ञ, सर्व-कर्माग्र-पूजिते!।।३
सर्व - मङ्गल - माङ्गल्य, जय त्वं सर्व-मङ्गल!
अमङ्गलोपशमन - महा - मङ्गल - हेतुक!।।४
जय सृष्टि-कृतां वन्द्य, जय स्थिति-कृता नत!
जय संहृति-कृत्-स्तुत्य, जय सत्-कर्म-सिद्धिद!।।५
सिद्ध-वन्द्य-पदाम्भोज, जय सिद्धि - विधायक!
सर्व सिद्ध्येक-निलय, महा-सिद्ध्यृद्धि-सूचक!।।६
अशेष - गुण-निर्माण, गुणातीत गुणाग्रणीः!
परिपूर्ण - चरित्रार्थ, जय त्वं गुण-वर्णित!।।७
जय सर्व - बलाधीश, बलारति बल - प्रद!
बलाकोज्ज्वल - दन्ताग्र, बालाबाल-पराक्रम!।।८
अनन्त - महिमाधार, धराधर - विदारण!
दन्ताग्र-प्रोत-दिङ्-नाग, जय नाग-विभूषण!।।९
ये त्वां नमन्ति करुणा - मय! दिव्य - मूर्ते!,
सर्वैनसामपि भुवो भुवि मुक्ति - भाजः।
तेषां सदैव हरसीह महोपसर्गान्,
स्वर्गापवर्गमपि सम्प्रददासि तेभ्यः।।१०
ये विघ्न - राज भवता करुणा - कटाक्षैः,
सम्प्रेक्षिताः क्षिति - तले क्षण-मात्रमत्र।
तेषां क्षयन्ति सकलान्यपि किल्विषाणि,
लक्ष्मीः कटाक्षयति तान् पुरुषोत्तमान् हि।।११
ये त्वां स्तुवन्ति नत - विघ्न-विघात-दक्ष!
दाक्षायणी - हृदय - पङ्कज - तिग्म - रश्मे!।
श्रूयन्त एव त इह प्रथिता न चित्रं,
चित्रं तदत्र गणपा यदहो! त एव।।१२
ये शीलयन्ति सततं भवतोऽङ्घ्रि-युग्मम्,
ते पुत्र - पौत्र - धन-धान्य-समृद्धि-भाजः।
संशीलितांघ्रि - कमला बहु - भृत्य-वर्गै—
र्भूपाल-भोग्य-कमलां विमलां लभन्ते।।१३
त्वं कारणं परम - कारण - कारणानाम्,
वेद्योऽसि वेद - विदुषां सततं त्वमेकः।
त्वं मार्गणीयमसि किञ्चन मूल-वाचां,
वाचामगोचर! चराचर - दिव्य - मूर्ते!।।१४
वेदा विदन्ति न यथार्थ-तया भवन्तं,
ब्रह्मादयोऽपि न चराचर - सूत्र - धार!
त्वं हंसि पासि विदधासि समस्तमेकः,

कस्ते स्तुति - व्यतिकरो मनसाप्यगम्य!॥१५
त्वद् - दुष्ट - दृष्टि - विशिखैर्निहतान्निहन्मि,
दैत्यान् पुरान्धक जलन्धर - मुख्यकांश्च।
कस्यास्ति शक्तिरिह यस्त्वदृतेऽपि तुच्छं,
वाञ्छेद्विधातुमिह सिद्धिद! कार्य-जातम्॥१६
अन्वेषणे ढुण्ढिरयं प्रथितोऽस्ति धातुः,
सर्वार्थ - ढुण्ढित - तया तव ढुण्ढि-नाम।
काशी - प्रवेशमपि को लभतेऽत्र देही,
तोषं बिना तव विनायक! ढुण्ढि-राज!॥१७
यो नाम ते जपति ढुण्ढि-विनायकस्य,
तं वै जपन्त्यनुदिनं हृदि सिद्धयोऽष्टौ।
भोगान् विभुज्य विविधान् विबुधोपभोग्यान्,
निर्वाणया कमलया व्रियते स चान्ते॥१८
दूरे स्थितोऽप्यहरहस्तव पाद - पीठं,
यः संस्मरेत् सकल-सिद्धिद! ढुण्ढि-राज!
काशी - स्थितेरविकलं सफलं लभेत,
नैवान्यथा न वितथा मम वाक् कदाचित्॥१९

॥फल-श्रुति—ईश्वर उवाच॥

इमां स्तुतिं मम कृतिं, यः पठिष्यति सन्मतिः।
न जातु तं तु विघ्नौघाः, पीडयिष्यन्ति निश्चितम्॥१
ढौण्ढीं स्तुतिमिमां पुण्यां, यः पठेद् ढुण्ढि-सन्निधौ।
सान्निध्यं तस्य सततं, भजेयुः सर्व-सिद्धयः॥२
इमां स्तुतिं नरो जप्त्वा, परं नियत-मानसः।
मानसैरपि पापैस्तैः, नाभिभूयेत कर्हिचित्॥३
पुत्रान् कलत्रं क्षेत्राणि, वराश्वान् वर-मन्दिरम्।
प्राप्नुयाच्च धनं धान्यं, ढुण्ढि-स्तोत्रं जपन्नरः॥४
सर्व - सम्पत् - करं नाम-स्तोत्रमेतन्मयेरितम्।
प्रजप्तव्यं प्रयत्नेन, मुक्ति - कामेन सर्वदा॥५
जप्त्वा स्तोत्रमिदं पुण्यं, क्वापि कार्ये गमिष्यतः।
पुंसः पुरः समेष्यन्ति, नियतं सर्व-सिद्धयः॥६

॥काशी-खण्डे श्रीढुण्ढि-राज-स्तोत्रम्॥

श्री ढुण्ढि-राज-स्तोत्र

(हिन्दी-रूपान्तर)

॥पूर्व-पीठिका—श्रीस्कन्द बोले॥

हे **मुनि-सत्तम!** जब **भगवान् विश्वेश्वर 'भवानी'** को और मुझे साथ ले **'काशी'** चले, उस समय नैगमेयों से युक्त **'महाशाख'** और **'विशाख'** के साथ **'नन्दी', 'भृङ्गी'** आदि आगे-आगे चल रहे थे। **'रुद्र'**-गणों ने चारों ओर से घेर लिया था। **'देव-ऋषियों'** के सहित **'सनकादिक'** स्तुति कर रहे थे। समस्त **देवालयों के स्वामी** और **'दिक्-पाल'** लोग अभिनन्दन कर रहे थे एवं 'तीर्थ'-गण अपना-अपना जल दरसा रहे थे। **'गन्धर्व'**-गण—'मङ्गल'-गीत गा रहे थे। **'अप्सराएँ'**— 'नृत्य'-मुद्रा में अपने हाथ-रूपी पल्लवों से पूजा कर रही थीं। **'ऋषियों'** की 'वेद'-ध्वनि से सभी दिशाओं का अग्र-भाग बधिर हो गया था। **चारण लोग** 'स्तुति'-गान कर रहे थे और सारे विमान चारों ओर भर गए थे॥१-५

महा-देव के ऊपर इधर-उधर से प्रसन्नता से पुलकित **देवाङ्गनाएँ** मुट्ठियों में भर-भर कर लावों की वर्षा कर रही थीं। अनेक **'विद्या'-धरियाँ** मालाओं का उपहार दे रही थीं। **'यक्ष', 'गुह्यक', 'सिद्ध'** इत्यादि आकाशचारी-गण 'जय'-ध्वनि कर रहे थे। 'शकुन'-सूचक **'मृग'** और **'पक्षि'**-गण स्वयं आगे प्रवेश कर रहे थे, प्रसन्न-मुख **'किन्नर'** और **'किन्नरियाँ' महा-देव** की स्तुति कर रही थीं। **'विष्णु', 'महा-लक्ष्मी' 'ब्रह्मा', 'विश्वकर्मा' 'नन्दी'** और **'गणेश'**—ये सभी वहाँ उपस्थित होकर इस महोत्सव की धूमधाम प्रकट कर रहे थे और **'नाग'-कन्याएँ** चारों ओर से 'मङ्गल'-आरती उतार रही थीं। उसी बेला में **महा-देव** ने **शुभ-मयी वाराणसी पुरी** में प्रवेश किया॥६-१०

वृषभ-ध्वज वृषराज पर से उतरकर सभी देवताओं के देखते ही **'गणेश'** का आलिङ्गन कर कहने लगे—इस **शुभा वाराणसी पुरी** में जो मैं आ सका हूँ, यह सब इसी लड़के का प्रसाद है। त्रैलोक्य-मण्डल में जो पिता का भी दुःसाध्य है, पुत्र से वही वस्तु सु-साध्य हो जाती है, इसका उदाहरण मैं स्वयं ही हूँ। मुझको **काशी** प्राप्त हो जाए, इससे **गजानन** ने न जाने कौन-सा कार्य अपनी बुद्धि के विभवों से किया है। पुत्रवान् तो मैं ही हूँ, क्योंकि जिसकी चिन्ता मुझे बहुत दिनों से थी और मेरा किया कुछ भी नहीं हो सका, उसी अभिलाषा को मेरे इस पुत्र ने अपने पौरुष से मेरे हाथ में लाकर रख दिया॥११-१५

ऐसा कहकर **इन्द्रादिक देवताओं** के भी स्तुत्य **भगवान् त्रिपुरान्तक,** प्रसन्नता-पूर्वक स्पष्ट वचनों में **गजानन की स्तुति** करने लगे॥१६

॥मूल स्तोत्र—भगवान् नीलकण्ठ बोले॥

हे विघ्न-विनाशक-श्रेष्ठ! भक्त-गण के निर्विघ्न-कारक! तुम

निर्विघ्न लोगों के विघ्न को शमन करनेवाले और महा-विघ्नों के लिए एक-मात्र विघ्न-कर्ता हो, अतएव तुम्हारी जय हो।।१

हे सर्व-गणों के अधीश! सर्व-गणों के अग्रगण्य! सभी गण तुम्हारे चरण-कमल पर प्रणत रहते हैं और तुम्हारे सद्-गुण गणना करने से अतीत हैं, अतएव तुम्हारी जय हो।।२

हे सर्व-व्यापक! सर्व-स्वामिन्! तुम समस्त बुद्धियों के एक-मात्र आशय हो, सभी मायाओं के प्रपञ्चज्ञ हो और सभी कर्मों में प्रथम पूजित हो, अतः तुम्हारी जय हो।।३

हे सर्व-मङ्गल-माङ्गल्य! सर्व-मङ्गल-स्वरूप! तुम समस्त अमङ्गलों के शमयिता और महा-मङ्गल के हेतु हो, अतः तुम्हारी जय हो।।४

हे सृष्टि-कर्ता ब्रह्मा के वन्दनीय! तुम्हारी जय हो। **हे पालन-कर्ता विष्णु के प्रणाम-पात्र!** तुम्हारी जय हो। **हे संहार-कर्ता रुद्र के स्तुतनीय!** तुम्हारी जय हो। **हे सत्कर्मों के सिद्धि-दायक!** तुम्हारी जय हो।।५

हे सिद्धि-विधायक! तुम्हारा पाद-पद्म तो सिद्धों को भी वन्दनीय है और तुम्हीं समस्त सिद्धियों के अकेले अवलम्बन हो एवं **महा-सिद्धि** तथा **महा-ऋद्धि** के सूचक भी तुम्हीं हो, अतएव तुम्हारी जय हो।।६

हे गुणातीत! तुम समस्त गुणों के बनानेवाले, गुणों में सबमें अग्रणी एवं परिपूर्ण चरित्र, कृतार्थ और गुण-वर्णित हो, अतः तुम्हारी जय हो।।७

हे सर्व-बलाधीश! इन्द्र के पराक्रम-दाता! तुम्हारे दाँत का अग्र-भाग बकुला के समान-उज्ज्वल है और तुम बालक होने पर भी बड़े ही पराक्रमी हो, अतः तुम्हारी जय हो।।८

हे अनन्त महिमाओं के आधार! हे पर्वत-विदारण! तुमने दिग्गजों को अपने दाँत के अग्र-भाग में खोंस लिया था। अतः **हे नाग-भूषण!** तुम्हारी जय हो।।९

हे करुणा-मय दिव्य-मूर्ते! भू-मण्डल पर जो लोग तुमको प्रणाम करते हैं, वे समस्त पापों के आश्रय होने पर भी मुक्ति के भागी होते हैं और तुम उनके सर्व-दैव बड़े-बड़े विघ्नों को हरते रहते हो और अन्त में स्वर्ग व अपवर्ग भी दे ही डालते हो।।१०

हे विघ्न-राज! पृथ्वी-तल पर आप जिन्हें करुणा-कटाक्ष से क्षण-मात्र भी देखते हैं, उनके समस्त पातक-पुञ्जों का क्षय हो जाता है और उन पुरुषोत्तमों पर लक्ष्मी कटाक्ष फेरने लगती है।।११

हे प्रणत लोगों के विघ्न-विघात करने में दक्ष पार्वती-हृदयारविन्द के सूर्य! जो लोग तुम्हारी स्तुति करते है; वे प्रसिद्ध सुने जाते हैं, यह कोई विचित्रता नहीं है। आश्चर्य तो यह है कि वे ही लोग यहाँ **गण-नायक** बनते हैं।।१२

जो शीलवान् लोग निरन्तर आपके **चरण-युगल का सेवन** करते हैं, वे पुत्र, पौत्र, धन, धान्य और समृद्धियों के भागी होते हैं और अनेक दास-दासी उनके पद-सरोज की सेवा में लग जाते हैं एवं सब निर्मल राज्य-भोग्य

लक्ष्मी के अधिकारी हो जाते हैं।।१३

हे परम-कारण! तुम्हीं समस्त कारणों के कारण हो, वेद-वेत्ताओं के भी परम-वेदनीय एक तुम्हीं हो। **हे वाङ्मूल!** तुम वचनों के अगोचर हो। **हे चराचर-स्वरूप दिव्य-मूर्ते!** तुम कोई अलौकिक अन्वेषणीय वस्तु हो।।१४

हे चराचर नाटक के सूत्र-धार! चारों वेद और ब्रह्मादिक देवता-गण भी यथार्थ-रूप से तुमको समझ नहीं सकते। **हे मनो-अगम्य!** तुम अकेले ही समस्त जगत् का संहार, पालन और सृजन करते हो, ऐसे में तुम्हारी कैसे स्तुति की जा सकती है?।।१५

तुम्हारे कुटिल-दृष्टि-रूपी बाणों से मारे गए **त्रिपुर, अंधक** और **जलन्धर** आदि दानवों को ही मैं मार सका। **हे सिद्धि-प्रद!** तुम्हारे बिना एक तुच्छ कार्य के भी करने की इच्छा कर सके, ऐसी यहाँ किसकी शक्ति है?।।१६

'ढुण्ढि'-धातु तो ढूढँने ही के अर्थ में प्रसिद्ध है और समस्त अर्थों के ढूँढ़ने ही कारण तुम्हारा नाम **'ढुण्ढी'** है। **हे ढुण्ढि-राज विनायक!** तुम्हारे सन्तोष के बिना **काशी-पुरी** में कौन प्रवेश भी पा सकता है?।।१७

हे ढुण्ढि-राज! जो कोई तुम्हारा नाम प्रति-दिन जपता है, उसे **आठों सिद्धियाँ** अपने-अपने हृदय में सदा जपती रहती हैं और वह देवताओं के लिए भोग्य अनेक भोगों को भोगकर अन्त में **मोक्ष-लक्ष्मी** के द्वारा वरण किया जाता है।१८

हे ढुण्ढि विनायक! तुम सकल सिद्धियों के दाता हो। कोई यदि दूर-देश-स्थित होकर प्रति-दिन तुम्हारे **पाद-पीठ का स्मरण** करता है, तो उसे **काशी-वास** का अविकल फल मिल जाता है, अन्यथा वह नहीं मिलता। मेरा यह वचन कभी असत्य नहीं हो सकता।।१९

।।फल-श्रुति—ईश्वर बोले।।

जो सद्-बुद्धि-जन मेरी इस स्तुति का पाठ करेगा, उसे बड़े-से-बड़े विघ्न-वर्ग कदापि पीड़ित नहीं कर सकेंगे, यह निश्चित है।।१

इस पवित्र **ढुण्ढि-राज स्तोत्र** को जो **ढुण्ढि-राज** के समीप पढ़ेगा, उसकी समस्त सिद्धियाँ सर्वदा सेवा करती रहेंगी।।२

नियमित रूप से अत्यन्त पवित्र चित्त से जो मनुष्य इस स्तुति का पाठ करेगा, उसे **मानसिक पाप** भी कभी दबा नहीं सकेंगे।।३

ढुण्ढि-स्तोत्र के पाठ करने से मनुष्य पुत्र, कलत्र, क्षेत्र, उत्तम घोड़े, उत्कृष्ट गृह, धन और धान्य सब कुछ प्राप्त कर सकता है।।४

मोक्षार्थी मनुष्य मेरे इस **सर्व-सम्पत्ति-कर-स्तोत्र** का पाठ अत्यन्त प्रयत्न के साथ सदैव करे।।५

इस स्तोत्र को पढ़कर फिर किसी प्रयोजन के लिए यात्रा करे, तो अवश्य ही **समस्त सिद्धियाँ** मिलती है और **कार्य सिद्ध** होता है।।६

* * *

(२)

सर्व-देव-कृत श्रीगणेश-स्तुति

।।देवा ऊचुः।।

गजाननाय पूर्णाय, सांख्य - रूप-मयाय ते।
विदेहेन च सर्वत्र, संस्थिताय नमो नमः।।१।।
अमेयाय च हेरम्ब, परशुधारकाय ते।
मूषक - वाहनायैव, विश्वेशाय नमो नमः।।२।।
अनन्त - विभवायैव, परेषां पर - रूपिणे।
शिव - पुत्राय देवाय, गुहाग्रजाय ते नमः।।३।।
पार्वती - नन्दनायैव, देवानां पालकाय ते।
सर्वेषां पूज्य - देहाय, गणेशाय नमो नमः।।४।।
स्वानन्द - वासिने तुभ्यं, शिवस्य कुल-दैवत।
विष्ण्वादीनां विशेषेण, कुल - देवाय ते नमः।।५।।
योगाकाराय सर्वेषां, योग - शान्ति-प्रदाय च।
ब्रह्मेशाय नमस्तुभ्यं, ब्रह्म - भूत - प्रदाय ते।।६।।
सिद्धि - बुद्धि-पते नाथ, सिद्धि-बुद्धि-प्रदायिने।
मायिने मायिकेभ्यश्च, मोहदाय नमो नमः।।७।।
लम्बोदराय वै तुभ्यं, सर्वोदर - गताय च।
अमायिने च मायाया, आधाराय नमो नमः।।८।।
गजः सर्वस्य वीजं यत्, तेन चिह्नेन विघ्नप।
योगिनस्त्वां प्रजानन्ति, तदाकारा भवन्ति ते।।९।।
तेन त्वं गज-वक्त्रश्च, किं स्तुमस्त्वां गजानन!
वेदादयो विकुण्ठाश्च, शङ्कराद्याश्च देवताः।।१०।।
शक्रादयश्च शेषाद्याः, स्तोतुं शक्ता भवन्ति ते।
तथापि संस्तुतोऽसि त्वं, स्फूर्त्या त्वद्-दर्शनात्मना।।११।।

।।श्रीमुद्गल-पुराणे सर्व-देव-कृत-श्रीगणेश-स्तुतिः।।

* * *

देवताओं द्वारा श्रीगणेश-स्तुति

(हिन्दी-रूपान्तर)

।।देवता बोले।।

हे गणेश्वर! आप गज के समान मुख धारण करनेवाले, **पूर्ण परमात्मा, ज्ञान-स्वरूप** हैं। आप सर्वत्र **विदेह-रूप** से विद्यमान हैं, आपको बारम्बार नमस्कार है।।१।।

हे हेरम्ब! आपको प्रमाणों द्वारा मापा नहीं जा सकता। आप **परशु** धारण करनेवाले हैं। आप का वाहन **मूषक** है, आप **विश्वेश्वर** को बारम्बार नमस्कार है।।२।।

आपका वैभव अनन्त है, आप **परात्पर** हैं। आप **भगवान् शिव के पुत्र** तथा **स्कन्द के बड़े भाई** हैं। **हे देव!** आपको नमस्कार है।।३

जो **माता पार्वती** को आनन्दित करनेवाले उनके पुत्र हैं, **देवताओं के रक्षक** हैं, जिनका विग्रह सभी के लिए पूज्य है, उन **श्रीगणेश** को बार-बार नमस्कार है।।४

स्व-आनन्द-धाम में विराजनेवाले जो **भगवान् शिव के कुल-देवता** हैं; जो **विष्णु आदि देवताओं के विशेष रूप से कुल-देवता** हैं, उनको नमस्कार है।।५

आप **योग-स्वरूप** एवं सभी को **योग-जनित शान्ति** प्रदान करनेवाले हैं, **ब्रह्म-भाव** की प्राप्ति करानेवाले आप **ब्रह्मेश्वर** को नमस्कार है।।६

हे नाथ! आप **सिद्धि** और **बुद्धि** के प्राण-पति, **सिद्धि-बुद्धि-प्रदान करनेवाले** हैं। आप **माया के अधिपति** तथा **मायावियों को मोह में डालनेवाले** हैं, आपको बार-बार नमस्कार।।७

आप **लम्बोदर** हैं तथा सभी के उदर में जठरामल की भाँति विराजमान हैं। आप पर किसी की माया नहीं चलती, आप ही **माया के आधार** हैं, आपको बार-बार नमस्कार।।८

हे विघ्न-राज! 'गज' सबका बीज है। उस बीज-रूप **'गज'**-चिह्न से ही योगी-जन आपको पहचानते हैं तथा आपका सारूप्य प्राप्त कर लेते हैं।।९

हे गजानन! बीज-स्वरूप **'गज'**-चिह्न के कारण ही आप **'गज-मुख'** कहलाते हैं। हम आपकी क्या स्तुति कर सकते हैं? आपकी स्तुति करने में तो **वेदादि शास्त्र** तथा **शङ्कर आदि देवेश्वर** भी कुण्ठित हो जाते हैं।।१०

शुक्र आदि विद्वान् तथा **शेष** आदि नाग भी आपके स्तवन में समर्थ नहीं हैं, फिर भी आपके दर्शन-रूप स्फूर्ति से हमने आपका स्तवन किया है।।११

* * *

(३)

नमामि त्वां गणाधिप!

गणाधिप नमस्तुभ्यं; सर्व-विघ्न-प्रशान्तिद।
उमानन्द-प्रज्ञ प्राज्ञ, त्राहि मां भव-सागरात्॥१॥
हरानन्द-कर ध्यान - ज्ञान-विज्ञानद प्रभो।
विघ्न - राज नमस्तुभ्यं, सर्व-दैत्यैकसूदन॥२॥
सर्व - प्रीति-प्रद श्रीद, सर्व-यज्ञैक-रक्षक।
सर्वाभीष्ट-प्रद प्रीत्या, नमामि त्वां गणाधिप॥३॥
॥पद्म-पुराणे, सृष्टि-खण्डे, श्रीगणेश-स्तुति॥

* * *

हे गणपते! मैं आपको प्रणाम करता हूँ!

(हिन्दी-रूपान्तर)

हे श्रीगणेश जी! आपको नमस्कार है। आप सभी **विघ्नों की शान्ति करनेवाले** हैं, **उमा के लिए आनन्द-दायक** तथा **परम बुद्धिमान्** हैं। आप भव-सागर से मेरा उद्धार कीजिए॥१

हे विघ्न-राज! आप **भगवान् शङ्कर को आनन्दित करनेवाले** हैं, आपका ध्यान करनेवालों को **ज्ञान** और **विज्ञान** के प्रदाता तथा सभी **दैत्यों के एक-मात्र संहारक** हैं। आपको नमस्कार है॥२

हे गणपते! आप सभी को **प्रसन्नता** और **लक्ष्मी** देनेवाले हैं, सभी **यज्ञों के रक्षक** हैं तथा सभी प्रकार के मनोरथों को पूर्ण करनेवाले हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूँ॥३

* * *

'प्राण' का रहस्य

❖ 'अवधूत' श्री शङ्करदास, बोरसी, दुर्ग (म०प्र०)-४७१००१

परमात्मा प्रकृति से **'प्राण'** बनाता है। **'प्राण'** समस्त इन्द्रियों में श्रेष्ठ है, ज्येष्ठ है। वह महा-बलवान है। सम्पूर्ण जगत् में **'प्राण-तत्त्व'** व्याप्त है। वह देह के भीतर तथा हृदय में भी है। **'पञ्च-प्राण'** प्रमुख हैं, जो शरीर के पाँच विशेष स्थानों में हैं। **'प्राण'** के वश में सभी हैं। **'प्राण'** के निकल जाने पर देह निर्जीव हो जाता है। **'प्राण'**— पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्यु-लोक में है। सूर्य-किरणों द्वारा अन्तरिक्ष का **'प्राण'** पर्जन्य के माध्यम से पृथ्वी पर आता है। पृथ्वी पर आने पर वह वायु तत्त्व में मिल जाता है। सूर्य, चन्द्र, प्रजा-पति-विराट् आदि **'प्राण'**-रूप ही हैं।

'प्राण-तत्त्व' प्राण-वायु से भिन्न है। इसी पर जीवन निर्भर है। वह वायु-तत्त्व से सूक्ष्म है। वैज्ञानिक अब तक **'प्राण'** के यथार्थ रहस्य को नहीं जान पाए। ऋणाणु-धनाणु से **'प्राण-परमाणु'** अत्यधिक सूक्ष्म है एवं प्रकाश-स्वरूप है। **'प्राण'** को विद्युद्-आत्मा कहा गया है। वह **'प्राण-शक्ति'— नित्य, अविनाशी** और **अभेद्य-अविभाज्य** एवं **तेजो-मय** है।

'प्राण' भी **सूक्ष्म, सूक्ष्म-तर** एवं **सूक्ष्म-तम** है। योगी **'प्राण-मय'** शरीर से **सङ्कल्प** द्वारा दूर देश जा सकता है। **'प्राण-मय'** शरीर—**अन्न-मय** स्थूल शरीर जैसे अनेक शरीर उत्पन्न कर सकता है। **'प्राण-तत्त्व'**—चन्द्र-सूर्य-नाड़ियों में प्रवाहित होता रहता है। **'अन्न-मय कोष'** से **'प्राण-मय कोष'** सूक्ष्म है और वह 'अन्न-मय कोष' से बाहर निकल सकता है। **'प्राण'** का निकलना **'प्राण' की मृत्यु** नहीं है, अपितु एक **'अन्न-मय कोष' से 'प्राण-मय' कोष छोड़कर दूसरे में प्रवेश** करना है।

जीव— शिव का ऐक्य हो जाना ही **'प्राण-शक्ति' का 'प्राणात्मा' में लय** हो जाना है। **'प्राण' का आत्मा 'शिव' है— 'ब्रह्म' है।** सिद्ध योगी 'प्राण' के प्रकार और स्थान को जान जाते हैं, किन्तु उसके यथार्थ स्वरूप को पूर्णतया जान नहीं पाते हैं।

'प्राण'— महा-बलवान्, महा-तेजो-मय परम उग्र है। इन्द्रियों व मन के भी तेज से अधिक उसका बल तेज है। महर्षियों ने **विराट् महा-शक्ति** एवं **विराट् परम पुरुष** की कृपा से **'प्राण'** को प्रत्यक्ष देखा है। उससे बातें भी की हैं। वह **अति रहस्य-मय** है। परमात्मा द्वारा उसका स्वरूप **अति गुह्य** रखा गया है। उसके अष्ट पाद हैं— १. मुख, २-३ नासा, ४-५ नेत्र, ६-७ कर्ण, ८. जिह्वा। चारों ओर तेज है। वह हृदय को मजबूती से पकड़े रहता है। यही कारण है कि **'प्राण'** निकलते समय कष्ट होता है। **'प्राण'** को **रुद्र-स्वरूप** कहा गया है। **'वाक्'** और **'प्राण'** अभिन्न हैं। ये दोनों **अग्नि**-स्वरूप हैं। **१. प्राण, २. अपान, ३. समान, ४. व्यान, ५. उदान**— ये **'पञ्च-प्राण'** हैं।

* * *

नव-ग्रह 'वार'-व्रत-विधि

(१) 'सूर्य'-ग्रह हेतु 'रविवार का व्रत'

जब **'जन्म'-कुण्डली** या **'गोचर'** के अनुसार **'सूर्य'**-ग्रह अनुकूल न हों, तब **'रवि-वार का व्रत'** करना चाहिए। **'रवि-वार का व्रत'** वैसे भी **सन्तान-हीन स्त्री-पुरुषों** के लिए बहुत लाभ-दायक होता है।

'रवि-वार के व्रत' को किसी भी मास में **शुक्ल-पक्ष के प्रथम 'रवि-वार'** से प्रारम्भ करना चाहिए। फिर लगातार **३१ रवि-वार** तक **'व्रत'** करना चाहिए।

'रवि-वार के व्रत' के भोजन में **नमक** नहीं खाना चाहिए। जहाँ तक हो सके, भोजन में गुड़, घी, गेहूँ का आटा और इलायची का प्रयोग करे। सूर्यास्त के एक घण्टे पूर्व भोजन **भगवान् सूर्य नारायण** को अर्पित कर करना चाहिए। भोजन के बाद कुछ देर **भजन-चिन्तन** करे तथा रात्रि में **गेहूँ-गुड़ का दान** किसी ब्राह्मण, कन्या आदि को देना चाहिए।

'व्रत-काल' में स्नान **बिल्व (बेल) की जड़** को गर्म जल में उबालकर, स्नान करनेवाले जल में डालकर करना चाहिए। स्नान के बाद अधिक-से-अधिक लाल रङ्ग के वस्त्र धारण करना चाहिए। **'स्नान'** के बाद नित्य-पूजन में **भगवान् सूर्य** के निम्नलिखित किसी एक मन्त्र का ३, ५, ७ या ११ बार **'जप'** करना चाहिए। यथा—

मन्त्र— (१) **ॐ हां हीं हौं सः सूर्याय नमः ॐ।** (११ अक्षर)।

(२) **ॐ ह्सौ श्रीं आं ग्रहादि-राजाय आदित्याय स्वाहा।** (१६ अक्षर)।

'३१ रविवार व्रत' करने बाद सम्भव हो, तो **'हवन'** करे। 'हवन' में **'अर्क'** एवं **'आम'** की लकड़ी का प्रयोग करे। ११ या २१ **आहुतियाँ** उक्त मन्त्र में से किसी एक मन्त्र को पढ़कर दे। **'पूर्णाहुति'** में **इलायची, देवदारु, केशर, खश, मुलेठी, लाल फूल, कनेर, लाल वस्त्र** आदि **भगवान् सूर्य** को चढ़ाए। 'हवन' के बाद **भगवान् सूर्य** को **'अर्घ्य'** देवे, फिर 'आरती' करे।

(२) 'चन्द्र'-ग्रह हेतु 'सोमवार का व्रत'

जब **'जन्म'-कुण्डली** या **'गोचर'** के अनुसार **'चन्द्र'**-ग्रह अनुकूल न हों, तब **'सोम-वार का व्रत'** करना चाहिए। **'सोम-वार का व्रत'** वैसे भी किसी विशेष मनोरथ की सिद्धि के लिए पूर्ण फल-दायक होता है।

'सोम-वार के व्रत' को किसी भी मास में **शुक्ल-पक्ष के प्रथम 'सोम-वार'** से प्रारम्भ करना चाहिए। फिर लगातार **५४ सोम-वार तक व्रत** करना चाहिए।

'सोम-वार के व्रत' के भोजन में **नमक** नहीं खाना चाहिए। जहाँ तक हो सके भोजन में चावल, चीनी और दही का प्रयोग करना चाहिए। सूर्यास्त के आधे घण्टे पूर्व **भगवान् चन्द्र** अथवा **भगवान्**

शिव को मन-ही-मन भोजन अर्पित कर करना चाहिए तथा भोजन के बाद कुछ काल तक भगवान् की आराधना करना चाहिए। फिर रात्रि में चावल-दही किसी ब्राह्मण, कन्या आदि को **'दान'** करना चाहिए।

'व्रत'-काल में स्नान **खिरनी की जड़** को जल में उबालकर, स्नान करनेवाले जल में डालकर करना चाहिए। स्नान के बाद अधिकतर **श्वेत वस्त्र** धारण करना चाहिए।

'स्नान' के बाद नित्य-पूजन में **भगवान् चन्द्र** के निम्न-लिखित किसी एक मन्त्र का ३, ५, ७ या ११ बार **'जप'** करना चाहिए। यथा—

मन्त्र— (१) **ॐ श्रां श्रीं श्रौं सः चन्द्रमसे नमः।** (११ अक्षर)।

(२) **ॐ श्रीं क्रीं हां चं चन्द्राय नमः।** (१० अक्षर)।

'५४ सोमवार व्रत' करने के बाद सम्भव हो, तो **'हवन'** करे। 'हवन' में **'पलाश'** की लकड़ी का प्रयोग करे और उक्त मन्त्र में से किसी एक मन्त्र को पढ़कर ११ या २१ आहुतियाँ दे। **'पूर्णाहुति'** में **शङ्ख, सिप्पी, श्वेत चन्दन, स्फटिक** और **अक्षत** आदि **चन्द्र भगवान्** को अर्पण करे। रात्रि में **निशा-पति भगवान् चन्द्र** का प्रसन्न-मुख होकर दर्शन करे।

(३) 'मङ्गल'-ग्रह हेतु मङ्गल-वार का व्रत

जब **'जन्म-कुण्डली'** या **'गोचर'** के अनुसार **'मङ्गल'-ग्रह** अनुकूल न हों, तब **'मङ्गल-वार का व्रत'** करना चाहिए। **'मङ्गल'-व्रत—ऋण-हर्त्ता और पुत्र-पौत्र-प्रवर्धक** होता है।

'मङ्गल-वार के व्रत' को किसी मास में **शुक्ल-पक्ष के प्रथम 'मङ्गल-वार'** से प्रारम्भ करना चाहिए। फिर लगातार **४५ मङ्गल-वार तक व्रत** करना चाहिए।

'मङ्गल-वार' के व्रत में **नमक** का परहेज अत्यन्त आवश्यक है। भोजन में मसूर, गुड़ और घी के बने हुए पदार्थों को ग्रहण करना चाहिए। भोजन ठीक सूर्यास्त के समय करना चाहिए। भोजन के बाद **ऋण-हर्त्ता मङ्गल-स्तोत्र** आदि का 'पाठ' करना चाहिए। फिर रात्रि में मसूर और गुड़ का दान करना चाहिए।

'व्रत'-काल में स्नान **अनन्त-मूल** और **नाग-जिह्वा जड़** को गर्म जल में उबालकर स्नान करनेवाले जल में डालकर करना चाहिए। 'स्नान' के बाद **बिना सिले हुए लाल रङ्ग के वस्त्र** पहनने चाहिए।

स्नान के बाद नित्य-पूजन में **भगवान् मङ्गल** के निम्नलिखित किसी एक मन्त्र का ३, ५, ७ या ११ बार **'जप'** करना चाहिए। यथा—

मन्त्र— (१) **ॐ क्रां क्रीं क्रौं सः भौमाय नमः ॐ।** (११ अक्षर)।

(२) **ऐं ह्सौः श्रीं द्रां कं ग्रहादिपतये भौमाय स्वाहा।** (१६ अक्षर)।

'४५ मङ्गल व्रत' करने के बाद सम्भव हो तो **'हवन'** करे। 'हवन' में **'खैर' की लकड़ी** का प्रयोग करे। **११ या २१ आहुतियाँ** उक्त मन्त्रों में से किसी एक मन्त्र को पढ़कर दे। **'पूर्णाहुति'** में **बिल्व-छाल, लाल-चन्दन, लाल फूल, माल-काङ्गनी, मौलसिरी** आदि **भगवान् मङ्गल** को अर्पित करे।

'मङ्गल'-वार के उक्त व्रत को **अभीष्ट-सिद्धि** एवं **परिवार के कष्ट-निवारण** हेतु आगे भी कर सकते हैं। यह विशेष शुभकारी है।

(शेष अगले अङ्क में)

* * *

अनन्त चतुर्दशी, २०५८ वि० (१ सितम्बर, २००१) के पावन अवसर पर :

अनन्त देवता की साधना

विनियोग—ॐ अस्य मन्त्रस्य व्यास ऋषिः, गायत्री छन्दः, अनन्तः देवता, चतुर्वर्ग-सिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः।

ऋष्यादि-न्यास—श्रीव्यास-ऋषये नमः शिरसि, गायत्री-छन्दसे नमः मुखे, अनन्ताय देवतायै नमः हृदि, चतुर्वर्ग-सिद्ध्यर्थे जपे विनियोगाय नमः अञ्जलौ।

ध्यान— **शङ्ख-चक्र-धरं देवं, चतुर्बाहुं किरीटिनं।**
सर्वायुधैरुपेतं च, गरुडोपरि-संस्थितम्।।
सनकादि-मुनीन्द्रैस्तु, सर्व-देवैरुपासितं।
श्री-भूमि-सहितं देवमुद्यदादित्य-सन्निभम्।।
प्रातरुद्यत्-सहस्रांशु-मण्डलोपम-कुण्डलम्।
अभयं वरदं देवं, धारयन्तं युगान्वितं।।
सर्व-लोकस्य रक्षार्थमनन्तं नित्यमेव हि।
ध्यायामि सततं देवं, चतुर्वर्ग-सिद्ध्यर्थेऽहम्।।

मानस पूजा— लं पृथिव्यात्मकं गन्धं समर्पयामि नमः। हं आकाशात्मकं पुष्पं समर्पयामि नमः। यं वाय्वात्मकं धूपं घ्रापयामि नमः। रं वह्न्यात्मकं दीपं दर्शयामि नमः। वं अमृतात्मकं नैवेद्यं निवेदयामि नमः। सं सर्वात्मकं ताम्बूलं समर्पयामि नमः।

मन्त्र— अनन्ताय नमः। (६ अक्षर)

'वर्ण-माला' में उक्त मन्त्र का **'जप'** निम्न प्रकार करे। यथा—

ॐ	८ ॠं अनन्ताय नमः ॠं	१६ अः अनन्ताय नमः अः	२४ जं अनन्ताय नमः जं
१ अं अनन्ताय नमः अं	९ ऌं अनन्ताय नमः ऌं	१७ कं अनन्ताय नमः कं	२५ झं अनन्ताय नमः झं
२ आं अनन्ताय नमः आं	१० ॡं अनन्ताय नमः ॡं	१८ खं अनन्ताय नमः खं	२६ ञं अनन्ताय नमः ञं
३ इं अनन्ताय नमः इं	११ एं अनन्ताय नमः एं	१९ गं अनन्ताय नमः गं	२७ टं अनन्ताय नमः टं
४ ईं अनन्ताय नमः ईं	१२ ऐं अनन्ताय नमः ऐं	२० घं अनन्ताय नमः घं	२८ ठं अनन्ताय नमः ठं
५ उं अनन्ताय नमः उं	१३ ओं अनन्ताय नमः ओं	२१ ङं अनन्ताय नमः ङं	२९ डं अनन्ताय नमः डं
६ ऊं अनन्ताय नमः ऊं	१४ औं अनन्ताय नमः औं	२२ चं अनन्ताय नमः चं	३० ढं अनन्ताय नमः ढं
७ ऋं अनन्ताय नमः ऋं	१५ अं अनन्ताय नमः अं	२३ छं अनन्ताय नमः छं	३१ णं अनन्ताय नमः णं

३२ तं अनन्ताय नमः तं
३३ थं अनन्ताय नमः थं
३४ दं अनन्ताय नमः दं
३५ धं अनन्ताय नमः धं
३६ नं अनन्ताय नमः नं
३७ पं अनन्ताय नमः पं
३८ फं अनन्ताय नमः फं
३९ बं अनन्ताय नमः बं
४० भं अनन्ताय नमः भं
४१ मं अनन्ताय नमः मं
४२ यं अनन्ताय नमः यं
४३ रं अनन्ताय नमः रं
४४ लं अनन्ताय नमः लं
४५ वं अनन्ताय नमः वं
४६ शं अनन्ताय नमः शं
४७ षं अनन्ताय नमः षं
४८ सं अनन्ताय नमः सं
४९ हं अनन्ताय नमः हं
५० ळं अनन्ताय नमः ळं

*

क्षं

५१ ळं अनन्ताय नमः ळं
५२ हं अनन्ताय नमः हं
५३ सं अनन्ताय नमः सं
५४ षं अनन्ताय नमः षं
५५ शं अनन्ताय नमः शं
५६ बं अनन्ताय नमः वं
५७ लं अनन्ताय नमः लं
५८ रं अनन्ताय नमः रं
५९ यं अनन्ताय नमः यं
६० मं अनन्ताय नमः मं
६१ भं अनन्ताय नमः भं
६२ बं अनन्ताय नमः बं
६३ फं अनन्ताय नमः फं
६४ पं अनन्ताय नमः पं
६५ नं अनन्ताय नमः नं
६६ धं अनन्ताय नमः धं
६७ दं अनन्ताय नमः दं
६८ थं अनन्ताय नमः थं
६९ तं अनन्ताय नमः तं

७० णं अनन्ताय नमः णं
७१ ढं अनन्ताय नमः ढं
७२ डं अनन्ताय नमः डं
७३ ठं अनन्ताय नमः ठं
७४ टं अनन्ताय नमः टं
७५ ञं अनन्ताय नमः ञं
७६ झं अनन्ताय नमः झं
७७ जं अनन्ताय नमः जं
७८ छं अनन्ताय नमः छं
७९ चं अनन्ताय नमः चं
८० ङं अनन्ताय नमः ङं
८१ घं अनन्ताय नमः घं
८२ गं अनन्ताय नमः गं
८३ खं अनन्ताय नमः खं
८४ कं अनन्ताय नमः कं
८५ अः अनन्ताय नमः अः
८६ अं अनन्ताय नमः अं
८७ औं अनन्ताय नमः औं
८८ ओं अनन्ताय नमः ओं
८९ ऐं अनन्ताय नमः ऐं

९० एं अनन्ताय नमः एं
९१ लृं अनन्ताय नमः लृं
९२ ऌं अनन्ताय नमः ऌं
९३ ॠं अनन्ताय नमः ॠं
९४ ऋं अनन्ताय नमः ऋं
९५ ऊं अनन्ताय नमः ऊं
९६ उं अनन्ताय नमः उं
९७ ईं अनन्ताय नमः ईं
९८ इं अनन्ताय नमः इं
९९ आं अनन्ताय नमः आं
१०० अं अनन्ताय नमः अं
१०१ अं अनन्ताय नमः अं
१०२ कं अनन्ताय नमः कं
१०३ चं अनन्ताय नमः चं
१०४ टं अनन्ताय नमः टं
१०५ तं अनन्ताय नमः तं
१०६ पं अनन्ताय नमः पं
१०७ यं अनन्ताय नमः यं
१०८ शं अनन्ताय नमः शं

पुरश्चरण— १ लाख जपो दशांश **घृत** से होमो **'विल्व'**-होम से धन, **'पुष्प'**-होम से वस्त्रादि और **'तिल'**-होम से आरोग्य-लाभो

विशेष— २ अक्टूबर, २००१ से **'पुरुषोत्तम'-मास** आरम्भ हो रहा है। इस बार यह **'आश्विन'**-मास में पड़ रहा है। ऐसा संयोग १४१ वर्षों बाद प्राप्त होता है। इस **अधिक मास में भगवान् अनन्त के मन्त्र के जप का विशेष महत्त्व** है। अतः **'अनन्त चतुर्दशी'** से (१-९-२००१) **'अधिक आश्विन मास'** (१६-१०-२००१) तक **भगवान् अनन्त का चिन्तन-मनन-जप** कर जिज्ञासु बन्धु विशेष रूप से कृत-कृत्य हों, यही कामना है —सम्पादको

* * *

गताङ्क से आगे :

'सौन्दर्य-लहरी' (सम-श्लोकी अनुवाद)

❖ पण्डित दामोदरदत्त मिश्र 'प्रसून', 'ललिता-निकेतन', ग्रा०-पो० कोरान सराय, बक्सर (बिहार)

☐ भगवती राज-राजेश्वरी के किरीट का वर्णन—

अनेकों सूर्यों से जटित, तव माणिक्य जैसे—
मुकुट सोने का, जो हिम-गिरि-सुते! ध्यान करता।
दुनों की छाया से युत लखि ललाटस्थ शशि को,
उगा बोरो नभ में—कवि वह न क्या है समझता॥४२

☐ 'केश-पाश' का वर्णन—

हमारे अन्तस का तम, सब विदारैं चिकुर वे—
लजाती है नीलोत्पल-वनज-शोभा कि जिनसे।
सुगन्धी उनसे ही ग्रहण करने हेतु, लगता—
बसे जाके उनमें कलपतरु के पुष्प-चय हैं॥४३॥

☐ 'माँग के बीच के सिन्दूर' का वर्णन—

हमें देवे मङ्गल, तव वदन सौन्दर्य-लहरी—
सदा जो बहती है, तव निरुपमा माँग बिच से।
जहाँ है बालारुण-किरण-सम सिन्दूर लगता—
बँधा है केशों के गहन तम से, क्योंकि रिपु है॥४४॥

☐ 'मुख और मुस्कान' का वर्णन—

चुए हैं काकुल, जो भ्रमर शिशु से हैं लग रहे—
घिरा उनसे तेरा वदन—हँसता कञ्ज-छवि को।
जभी मुस्काती हो, दशन सब केशर-सुरभि हो—
नशा भर देते हैं, मदन-रिपु-नैनालिगण में॥४५॥

☐ 'मुकुट-शोभित-ललाट' का वर्णन—

लुनाई की ज्योती-युत विमल, जो भाल तव है—
उसे इक मानूँ, औ मुकुट दूसरा चाँद-टुकड़ा।
तले ऊपर क्रम से यदि रख दिया जाए, तब वह—
सुधा-लेपन सीवन-सहित रचता पूर्ण शशि को॥४६॥

☐ 'भ्रू-विशेष' का वर्णन—

भवें थोड़ी टेढ़ी, जग - भय - विनाशार्थ-चतुरे—
वही धन्वां, जिसको मदन धरता वाम कर से।
अली-सी आँखें ही धनुष-गण हैं, दिख नहिं रहा—
कलाई औ मुट्ठी के बिच छपित मध्यांश धनु का॥४७॥

☐ तीनों नेत्रों का वर्णन—

दिनों को जनमाती तव दहिन नैना सुरुज हो,
निशा को भी बाँई सिरजन करे जो कि शशि है।
नजर तीजी स्वर्णिम कमल-छवि जिससे दलित है—
बनाती है, सन्ध्या—दिवस-निशि की बीच-विचवा॥४८॥

☐ 'दृष्टि' का वर्णन—

विशाला मङ्गल से, छवि मँह अयोध्या कमल से—
कृपा की हो धारा, गजब मधुरा भोग-वतिका।
अवन्ती हैं आँखें, बहु नगर-विस्तार विजया—
पुरों के नामों की व्यवहरण योग्या, विजय हो॥४९॥

☐ 'आँखों की अरुणिमा' का वर्णन—

प्रबन्धों के गुच्छे कवि-जन - रचे कर्ण-गत हैं,
उन्हीं के केशर की रसिक बनतीं भौंर-अँखियाँ।
कटाक्षों के मिस वे रस चख रहीं कान तक जा,
इसी ईर्ष्या से तव निटिल-नैना कुछ अरुण हैं॥५०॥

☐ 'एक ही दृष्टि का पात्र-भेद से वैविध्य'—

रसीली शङ्कर पै, इतर जन पै कुत्सन परा,
सरोषा गङ्गा पै, शिव-चरित पै हैरत भरी।
डरी-सी साँपों से, कमल-गण-सौभाग्य-जननी,
सखी पै मुस्काती तव नजर, मुझ पै स-करुणा॥५१॥

☐ 'आँखों के प्रभाव' का वर्णन—

गए जो कानों तक, ग्रथित जहँ भ्रू-पाँख सम हैं,
पुरारी के मन का द्रवण फल है सिर्फ जिनका।
दुनों नैना तेरे हिम-गिरि कुलोत्तंस कलिके—
जनाते हैं, कानों तक पहुँचते काम-शर हैं॥५२॥

☐ 'तीन नयनों का वर्णन'—

बँटी सी, त्रैवर्णी, प्रचुरतर लीलाञ्जन-लगी—
तुम्हारी वे सोहें, शिव-सखि, भली तीन अँखियाँ।
मरे से ब्रह्मा, औ हरि-गिरिश को कल्प-छय पै,
जिलाने को फिर से, त्रिगुण बरसाती लग रहीं॥५३॥
हमारी शुद्धी के हित, शिव - पराधीन-हृदये!,
दयार्द्रा आँखों की अरुण-धवल-श्याम रुचि से।
तुम्हीं सोन औ गङ्गा अथच यमुना— तीन रचके,
पुनीत इन तीर्थों को विलग करने में लग रही॥५४॥

☐ 'आँख-मिचौनी' के प्रभाव का वर्णन—

निमेषोन्मेषों से प्रलय उदयी-भाव जग का—
हुआ, ऐसा कहते सुजन सब हे मूधर - सुते!
हुआ पैदा, तेरे पलक उठने से जगत् जो—
उसी की रक्षा में पलक नहिं गिरते, लग रहा॥५५॥

☐ 'आँखों के सौन्दर्य' का वर्णन—

अपर्णे!, कानों से नयन चुगली हैं कर रहे—
समझ के यों, डूबीं जल-विच सु-नैना मछलियाँ।
दलों के फाटक को कुमुद, सुषमा बन्द करके—
चली जाती प्रातः-निशि, फिर उसे खोल घुसती॥५६॥

☐ 'इधर भी फेरो माँ नयन के कोर' एक प्रार्थना—

लजाएँ नीलोफर, अइस अपनी आँखियन सों—
अरी माँ, नहलाओ दयित बनि मुझ दूर-गत को।
कृतारथ होगा ये जन न इसमें हानि तुम्हरी—
महल में या बन में सम किरण हैं चाँद तजते॥५७॥

☐ 'कर्ण-पाली' का वर्णन—

मुड़े से वे पाली - युगल तव, हे पर्वत-सुते!
न किसमें उपजाते मदन-धनु-सा कौतुक भला?
कि कानों से तिर्छे चलकर, सुहाती सतत जो—
भवें ऐसी, करतीं सृजन शर-सन्धान मति हैं॥५८॥

☐ 'कपोल'-सौन्दर्य-वर्णन—

सुहाते गालों पै प्रति-फलित-ताटङ्क - युग से—
लगे मुख को मानूँ मदन-रथ मैं चार-पहिया।
कि चढ़के जिस पै वह प्रमथ-पति से युद्ध करता—
धरित्री-रथ, जिनका बस द्वि-पद है—'सूर्य-शशि' का॥५९॥

☐ 'कान के दोनों कुण्डलों' का वर्णन—

जु ब्रह्माणी-वाणी, अमृत-लहरी की विजयिनी—
पिया तू ने देवि!, श्रवण-चुलुकों से अविरलऽऽ।
प्रशंसा में हिलते शिर सदृश तव कुण्डल दुनों—
झनाझन के स्वर से प्रति-वचन देते लग रहे॥६०॥

☐ 'नासावंश और नकबेसर' का वर्णन—

सुनासा का बांसा अयि गिरि-सुबंश-ध्वज-पटे!,
यथोचित दे देवे फल मुझ भगत को तुरत ही।
बहे मोती जिससे, शिशिर-तर निःश्वास बनके—
कि 'छूछी' ऊपर है, जिस वजह मुक्ता-मणि-मयी॥६१॥

☐ 'ओठों की सुन्दरता' का चित्रण—

सहज लाल ओठों की, अयि सुघड़ दन्तावलि - युक्ते—
तभी माषूँ जोड़ी यदि फलद हो विद्रुम-लता।
न क्यों विम्बा? वो है नकल भर तेरे बदन का,
न हो क्यों शर्मिन्दा, जब तुलन-पल्ले पर चढ़े॥६२॥

☐ 'मुख-चन्द्र' का वर्णन—

सु-ज्योत्सना मुस्काती तव वदन-चन्द्र-च्युत पिये—
चकोरों को व्यापी अधिक रस से चञ्चु-जड़ता।
अतः वे खट्टे की रुचि रख सुधाधार शशि की—
निशा में पीते हैं छककर, समझ कांजिक उसे॥६३॥

☐ वागीन्द्रिय के रूप में 'जिह्वा' का वर्णन—

स्व-भर्ता का तूने, अथक गुण का गायन किया,
इसी से वो धन्या, अड़हुल सरिस, जीभ-विलसी।
पड़ी इसके आगे स्फटिक-मणि-सी मूर्ति धवला,
अहो वाग्देवी यों परिणमित हैं रक्त वपु में॥६४॥

(क्रमशः)

* * *

'ग्रह'-मातृका-न्यास

विनियोग—अस्य श्रीग्रह-मातृका-मन्त्रस्य श्री दक्षिणामूर्तिः ऋषिः, गायत्री छन्दः, मातृका-ग्रह-रूपिणी श्रीसुन्दरी देवता न्यासे विनियोगः।

ऋष्यादि-न्यास—श्रीदक्षिणामूर्तये ऋषये नमः शिरसि, गायत्री छन्दसे नमः मुखे, मातृका-ग्रह-रूपिणी श्रीसुन्दरी-देवतायै नमः हृदि।

षडङ्ग-न्यास—अं कं खं गं घं ङं आं ऐं—**हृदयाय नमः**। इं चं छं जं झं ञं ईं क्लीं—**शिरसे स्वाहा**। उं टं ठं डं ढं णं ऊं सौः—**शिखायै वषट्**। एं तं थं दं धं नं ऐं सौः—**कवचाय हुम्**। ओं पं फं बं भं मं औं क्लीं—**नेत्र-त्रयाय वौषट्**। अं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं अः ऐं —**अस्त्राय फट्**।

ध्यान— **रक्तं श्वेतं तथा रक्तं, श्यामं पीतं च पाण्डुरं।**

धूम्र-कृष्णं च धूमं च, धूम-धूम्रं विचिन्तयेत्॥

रवि-मुख्यान् काम-रूपान्, सर्वाभरण-भूषितान्।

वामोरुस्थस्वस्वशक्तींश्च, दक्षिणेन

न्यास—अं आं इं ईं उं ऊं एं ऐं ऋं ॠं ऌं ॡं ओं अं [illegible] **रेणुकाम्बायै नमो**—**हृदि**। यं रं लं वं **चन्द्रायामृताम्बायै नमो**—**भ्रू-मध्ये**। कं खं [illegible] **धामाम्बायै नमो— नेत्रयोः**। चं छं जं झं ञं **बुधाय ज्ञान-रूपाम्बायै नमो**—**कर्णयोः**। टं ठं [illegible] णं **बृहस्पतये यशस्विन्यम्बायै नमो**—**हृदयो-परिभागे**। तं थं दं धं नं **शुक्राय शाङ्कर्यम्बायै नमो —कण्ठे**। पं फं बं भं मं **शनैश्चराय शक्त्यम्बायै नमो —नाभौ**। शं षं सं **राहवे कृष्णाम्बायै नमो—[illegible]योः**। हं **केतवे धूम्राम्बायै नमो**—**गुदे**। ळं **वराहाय शान्ति-रूपाम्बायै नमो**—**लिङ्गे**। क्षं **कर्माय क्षेमाम्बायै नमो**—**पृष्ठ-देशे**।

* * *

'नक्षत्र'-मातृका-न्यास

विनियोग—अस्य श्रीनक्षत्र-मातृका-मन्त्रस्य श्री दक्षिणामूर्तिः ऋषिः, गायत्री छन्दः, नक्षत्र-रूपिणी श्रीसुन्दरी देवता न्यासे विनियोगः।

ऋष्यादि-न्यास—श्रीदक्षिणामूर्तये नमः शिरसि, गायत्री छन्दसे नमः मुखे, नक्षत्र-रूपिणी श्रीसुन्दरी-देवतायै नमः हृदि।

ध्यान— **ज्वलत्-कालाग्नि-सङ्काशाः, सर्वाभरण-भूषिताः।**

नतिपाण्योऽश्विनी-मुख्या, वरदाभय-पाणयः॥

न्यास—'अं-आं' **अश्विन्यै नमः**—ललाटे। 'इं-ईं' **भरिण्यै नमः**—दक्ष-नेत्रे। 'उं-ऊं' **कृत्तिकायै नमः**—वाम-नेत्रे। 'ऋं-ॠं-लृं-ॡं' **रोहिण्यै नमः**—दक्ष-कर्णे। 'एं' **मृगशिरसे नमः**— वाम-कर्णे। 'ऐं' **आर्द्रायै नमः**—दक्ष-नसि। 'ओं-औं-अं-अः' **पुनर्वसवे नमः**—वाम-नसि। 'कं' **पुष्यायै नमः**—कण्ठे। 'खं-गं' **आश्लेषायै नमः**—दक्ष-स्कन्धे। 'घं-ङं' **मघायै नमः**—वाम-स्कन्धे। 'चं-छं' **पूर्वा-फाल्गुन्यै नमः**—दक्ष-कूपरे। 'जं' **उत्तरा-फाल्गुन्यै नमः**— वाम-कूपरे। 'झं-ञं' **हस्ताय नमः**—दक्ष-मणि-बन्धे। 'टं-ठं' **चित्रायै नमः**—वाम-मणि-बन्धे। 'डं' **स्वात्यै नमः**—दक्ष-हस्ते। 'ठं-णं'— **विशाखायै नमः**—वाम-हस्ते। 'तं-थं-दं' **अनुराधायै नमः**—नाभौ। 'धं' **ज्येष्ठायै नमः**— दक्ष-कटौ। 'नं-पं-फं' **मूलाय नमः**—वाम-कटौ। 'बं' **पूर्वाषाढायै नमः**—दक्षोरौ। 'भं' **उत्तराषाढायै नमः**—वामोरौ। 'मं' **अभिजित् नक्षत्राय नमः**—लिङ्गे। 'यं' **श्रवणाय नमः**— दक्ष-जानुनि। 'रं' **धनिष्ठायै नमः**—वाम-जानुनि। 'लं' **शतभिषायै नमः**—दक्ष-जङ्घायां। 'वं-शं' **पूर्वा भाद्रपदायै नमः**—वाम-जङ्घायां। 'ष-सं-हं' **उत्तरा भाद्रपदायै नमः**—दक्ष-पादे। 'ळं-क्षं' **रेवत्यै नमः**—वाम-पादे।

* * *

'राशि' मातृका-न्यास

विनियोग—अस्य श्रीराशि-मातृका-मन्त्रस्य श्रीदक्षिणा-मूर्तिः ऋषिः, गायत्री छन्दः, राशि-रूपा श्रीसुन्दरी देवता ःयासे विनियोगः।

ऋष्यादि-न्यास—श्रीदक्षिणा-मूर्तये नमः शिरसि, गायत्री छन्दसे नमः मुखे, राशि-रूपा श्रीसुन्दरी-देवतायै नमः हृदि।

ध्यान— **रक्त-श्वेत-हरित्-वर्ण, पाण्डु-चित्रासितान् स्मरेत्।**
पिशङ्ग - पिङ्गलौ बभ्रु, कर्बुराशितभ्रभानू।।

न्यास—'अं आं इं ईं' **मेषाय नमः**—दक्ष-पाद-गुल्फे। 'उं ऊं ऋं' **वृषाय नमः**— दक्ष-जानुनि। 'ॠं ॡं लृं' **मिथुनाय नमः**—दक्ष-वृषणे। 'एं ऐं' **कर्काय नमः**—दक्ष-कुक्षौ। 'ओं औं' **सिंहाय नमः**—दक्ष-स्कन्धे। 'अं अः शं षं सं हं ळं' **कन्यायै नमः**—दक्ष-शिरो-भागे। 'कं खं गं घं ङं' **तुलायै नमः**—वाम-शिरो-भागे। 'चं छं जं झं ञं' **वृश्चिकाय नमः**—वाम-स्कन्धे। 'टं-ठं-डं-ढं-णं' **धनुषे नमः**—वाम-कुक्षौ। 'तं-थं-दं-धं-नं' **मकराय नमः**—वाम-वृषणे। 'पं-फं-बं-भं-मं' **कुम्भाय नमः**—वाम-जानुनि। 'यं-रं-लं-वं-क्षं' **मीनाय नमः**— वाम-पाद-गुल्फे।

* * *

श्रीदुर्गा-पूजा की विशिष्ट विधियाँ

❖ श्री के० पिच्चूमणि अयङ्गार

दक्षिण भारत में **नवार्ण मन्त्र** की **नव दुर्गाओं** (१ **शैल-पुत्री**, २ **ब्रह्म-चारिणी**, ३ **चन्द्र-घण्टा**, ४ **कूष्माण्डा**, ५ **स्कन्द-माता**, ६ **कात्यायनी**, ७ **काल-रात्रि**, ८ **महा-गौरी** और ९ **सिद्धि-दात्री**) का पूजा-विधान जिस ढँग से किया जाता है, वह निराला है। **नौ माताओं की पूजा** दक्षिण भारत में स्थूल-रूप से की जाती है। सूक्ष्म-रूप से जिन **नौ माताओं की पूजा** होती है, उनमें दीक्षित साधक ही भाग लेते हैं। **सूक्ष्म माताओं के शुभ नाम** इस प्रकार हैं—

प्रथमा वन - दुर्गा च, द्वितीया शूलिनी मता। तृतीया जात-वेदा तु, चतुर्थी शान्तिरीरिता।।
पञ्चमी शबरी चेति, ज्वाला-दुर्गा ततः परम्। सप्तमी लवणा चेति, आसुरी अष्टमी स्मृता।।
नवमी दीप-दुर्गेति, नव-दुर्गाः प्रकीर्तिताः।।

अर्थात् १ वन-दुर्गा, २ शूलिनी-दुर्गा, ३ जात-वेदा-दुर्गा, ४ शान्ति-दुर्गा, ५ शबरी-दुर्गा, ६ ज्वाला-दुर्गा, ७ लवणा-दुर्गा, ८ आसुरी-दुर्गा और ९ दीप-दुर्गा।

उक्त **नव-दुर्गाओं की पूजा** 'नव-रात्र' के दिनों में तथा हर महीने की **अष्टमी, नवमी** तथा **त्रयोदशी** के दिनों में विशेष रूप से की जाती है। **'नव-रात्र'** के प्रथम तीन दिनों में दक्षिण भारत के सभी साधकों के घरों में **दुर्गा** की ही पूजा की जाती है।

श्रीदुर्गा-सप्तशती का पाठ प्रति-दिन **राहु-काल** में करना विशेष फल-दायक होता है। **अर्क-मङ्गल-गुरु-बुध-शुक्र-शनि-सोम**—इन सात दिनों में **'अर्क'** अर्थात् **रवि** के दिन सायं साढ़े चार बजे से छः बजे तक डेढ़ घण्टे का समय, **मङ्गल** के दिन तीसरे पहर तीन बजे से सायं साढ़े चार बजे तक डेढ़ घण्टे का समय, **सोम** के दिन सुबह साढ़े सात बजे से नौ बजे तक डेढ़ घण्टे का समय **राहु-काल** होता है। अतः **श्रीदुर्गा-सप्तशती का पाठ रवि के दिन राहु-काल में प्रारम्भ करके सोम के दिन सुबह राहु-काल में ही समाप्त किया जाता है।** जो लोग लौकिक और अन्य कार्यों में व्यस्त हैं, वे **राहु-काल में प्रति-दिन शत-श्लोकों का पाठ** अवश्य करते हैं। **रविवार के राहु-काल में नियमित रूप से श्रीदुर्गा-सप्तशती का पारायण** साधक लोग अवश्य करते हैं। जैसे कि **नेपाल** के द्विजों के लिए **श्रीदुर्गा-पूजा** के दिनों मांस-भक्षण अनिवार्य है, वैसे ही **दक्षिण** के कुछ द्विजों के घरों में भी **पशु-बलि** की जाती है और साधक **'महा-प्रसाद'** के रूप में उसे ग्रहण करते हैं।

राहु-काल में श्रीदुर्गा-पूजा

दक्षिण-भारत और **नेपाल** के पूजा-क्रम में अधिक भेद नहीं है। **'राहु-काल'** में **स्त्रियों द्वारा विशेषतः कन्याओं द्वारा दुर्गा-पूजा** करना एवं करवाना अधिकांश शाक्तों के घरों में प्रचलित है।

राहु-काल की समय-सारिणी

रविवार : ४।। सायं से ६ सायं। **सोमवार** : प्रातः ७।। से ९ प्रातः। **मङ्गलवार** : सायं ३

से ४।। सायं। **बुधवार** : मध्याह्न १२ से १।। बजे। **गुरुवार** : मध्याह्न १।। से ३ सायं। **शुक्रवार** : प्रातः १०।। से मध्याह्न १२। **शनिवार** : प्रातः ६ से १०।। बजे।

सूर्योदय का समय जहाँ सुबह ६ बजे हो, उसी के अनुसार उपर्युक्त सारिणी दी गई है। **प्रयाग** के लिए सुबह छः बजकर सात मिनट के हिसाब से **'राहु-काल' की गणना** होती है।

अब हम यह देखें कि **'राहु'** और **'दुर्गा'** का क्या सम्बन्ध है। नौ ग्रहों में **'राहु'** और **'केतु'** आसुर-ग्रह के रूप में माने जाते हैं। **'श्रीदुर्गा-सप्तशती'** के प्रथम अध्याय में ही है कि **मधु-कैटभ** नाम के असुर-युग्म से वर प्राप्त करने के बाद **शङ्ख-चक्र-गदा-धारी भगवान् विष्णु** ने उनके **जघन-भाग** और **शिरो-भाग** का छेदन किया, तदनन्तर **दुर्गा माता का अवतार** हुआ।

विष्णु-पुराण एवं अन्य-पुराणों में भी **दुर्गा माता** के प्रभाव का वर्णन हुआ है। उनमें यों बताया गया है कि **भगवान् विष्णु** ने **मोहिनी**-रूप धारण करके जब देवों के बीच अमृत बाँटा था, तब **'राहु'-'केतु'** भी देव-गोष्ठी में शामिल हुए, अमृत भी उन्हें मिल गया। **इन्द्र** ने उनका सिर काटा तो था, परन्तु अमृत के प्रभाव से दोनों जीवित ही रहे। एक का अमृत गले के नीचे उतर गया, अतः उसका सिर कटा हुआ धड़ ही जीवित रहा, यही **'केतु'** है। शाक्तों के अनुसार वही **केतु— 'मुण्ड'**-नाम का असुर है। दूसरे असुर का अमृत गले तक ही था, अतः उसका शिरो-भाग ही जीवित रहा। शिरो-भागवाले उसी असुर का नाम **'राहु'** है। शाक्तों के अनुसार वही **राहु— 'चण्ड'**-नाम का असुर है। **चण्डिका माता** के कहे अनुसार **काली** ने **चण्ड-मुण्ड का वध** किया, इसीलिए **काली** का नाम **चामुण्डा** बन गया। इस बात का विवरण **'श्रीदुर्गा-सप्तशती'** के सप्तम अध्याय में मिलता है।

उसी **काली की 'राहु-काल' में पूजा** करने से हमारे अन्दर **चण्ड-मुण्ड** की जो आसुरी वृत्तियाँ हैं, उनका नाश होता है।

ज्योतिष-शास्त्र में कहा गया है कि—**'शनि-वत् राहुः, कुज-वत् केतुः'** अर्थात् **'राहु'— शनि के समान फल** देता है तथा **केतु— कुज या मङ्गल के समान। केतु** अर्थात् कुज— कुमार, जो उदीची दिशा का पालक है। **राहु— शनि— दक्षिण दिशा** का पालक है।

'चण्डी-कवच' में कहा गया है कि **'दक्षिणेऽवतु वाराही....उदीच्यां पातु कौमारी'**—अर्थात् **वाराही** एवं **कौमारी शक्तियों के अनुग्रह से चण्ड-मुण्ड पर विजय** मिल जाती है। **राहु-काल** में इन दोनों शक्तियों (**वाराही** और **कौमारी**) का मिलन होता है।

ज्योतिष-शास्त्र तथा **प्राणायाम-विज्ञान** में इस बात पर बल दिया जाता है कि प्रति-दिन **'राहु-काल'** में जीव का प्रवेश **सुषुम्णा नाड़ी** में सहज ही हो जाता है। उस समय जो भी मन्त्र जपा जाता है, उसकी सिद्धि हो जाती है। अन्य मन्त्रों की अपेक्षा **दुर्गा-मन्त्र** की—विशेषतः **नवार्ण मन्त्र** की—सिद्धि शीघ्र मिलती है।

शनि, राहु, कुज (मङ्गल) तथा **केतु**—ये चारों ग्रह **अग्नि** एवं **वायु** महा-भूतों के द्योतक हैं। अतः **राहु,** जो **शनि** के प्रतिनिधि हैं अर्थात् मृत्यु के द्योतक हैं, उनके चंगुल या पाश से

मुक्ति पाने के लिए **दुर्गा-मन्त्र** का जपना तथा **दुर्गा की पूजा** करना बड़ा फल-प्रद है। **दुर्गा माता** के ध्यान-श्लोक में इस बात का भी वर्णन है कि—**'गण्डौ यक्ष-यमौ'**।

निशुम्भ-शुम्भ-वध के बाद **'श्रीदुर्गा-सप्तशती'** के **एकादश अध्याय** में **भद्र-काली की स्तुति** सभी देव-गण करते हैं। यथा—

ज्वाला-करालमत्युग्रमशेषासुर-सूदनम्। त्रिशूलं पातु नो भीतेः, भद्र-कालि! नमोऽस्तु ते।।

इन **भद्र-काली की पूजा— 'राहु-काल'** में ही करने का **ज्योतिष-शास्त्र** में विधान है। उसमें तथा **दक्षिणाम्नाय** में यह माना गया है कि **नैर्ऋति (दक्षिण-पश्चिम) दिशा— 'राहु'** की है तथा **वायव्य (उत्तर-पश्चिम) दिशा— 'केतु'** की है। **नैर्ऋति दिशा में खड्ग-धारिणी माता दुर्गा की उपासना** करने के लिए उक्त **'राहु-काल'** ही उपयुक्त है।

यह तो हम सब जानते हैं कि **'श्रीदुर्गा-सप्तशती'** का पाठ सभी दिनों में करना श्रेयस्कर है। यदि किसी अनिवार्य कारण-वश सभी दिनों में पाठ पूरा करने में असमर्थ हों, तो **रविवार** के **'राहु-काल'** में **प्रथमाध्याय-पाठ** का प्रारम्भ करना चाहिए। **सौ श्लोकों का पारायण** करना पर्याप्त है। **'राहु-काल' में सप्तशती के पाठ का क्रम** इस प्रकार है—

रविवार—सायं साढ़े चार बजे से छः बजे तक प्रथमाध्याय के सौ श्लोक **'भगवान् कमलेक्षणः' ('विशुद्ध चण्डी'—पृष्ठ ६५)** तक।

सोमवार—प्रातः साढ़े सात बजे से नौ बजे तक। प्रथम अध्याय के शेष श्लोक, द्वितीय अध्याय एवं तृतीय अध्याय के २८वें श्लोक **'तद्-वधाय तदाऽकरोत्' ('विशुद्ध चण्डी'—पृष्ठ ७६)** तक।

मङ्गलवार—तीसरे पहर तीन बजे से साढ़े चार बजे तक। तृतीय अध्याय के शेष श्लोक, चतुर्थ अध्याय एवं पञ्चम अध्याय के ४२वें श्लोक अर्थात् **'या देवी सर्व-भूतेषु, जाति-रूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै नमस्तस्यै, नमस्तस्यै नमो नमः।' ('विशुद्ध चण्डी'-पृष्ठ ८७)** तक।

बुधवार—मध्याह्न १२ बजे से डेढ़ बजे तक। पञ्चमाध्याय के शेष श्लोक तथा षष्ठ अध्याय के १३वें श्लोक **'चकाराऽम्बिका ततः' ('विशुद्ध चण्डी'-पृष्ठ ९४)** तक।

गुरुवार—मध्याह्न डेढ़ बजे से तीन बजे तक। षष्ठ अध्याय के शेष श्लोक, सप्तम अध्याय एवं अष्टम अध्याय के ६२वें श्लोक **'रक्त-बीजो महाऽसुरः।' ('विशुद्ध चण्डी'—पृष्ठ १०४)** तक।

शुक्रवार—प्रातः साढ़े दस बजे से बारह बजे तक। अष्टम अध्याय का शेष एक श्लोक, नवम अध्याय, दशम अध्याय तथा एकादश अध्याय के २६वें श्लोक **'ज्वाला-करालमत्युग्रमशेषासुर-सूदनम्। त्रिशूलं पातु नो भीतेः, भद्र-कालि! नमोऽस्तु ते' (विशुद्ध चण्डी—पृष्ठ ११४)** तक।

विशेष— शुक्र के 'राहु-काल' की घड़ी में उपर्युक्त श्लोक की १०८ आवृत्ति करने से

सभी कामनाओं की पूर्ति हो जाती है।

शनिवार— प्रातः ६ से १०।। बजे तक। एकादश अध्याय के शेष श्लोक से अन्तिम त्रयोदश अध्याय के अन्तिम श्लोक **'सावर्णिर्भविता मनुः'**- (**'विशुद्ध चण्डी'— पृष्ठ १२४**) तक।

'सूर्य-सावर्णि' के बाद—**१ दक्ष-सावर्णि, २ ब्रह्म-सावर्णि, ३ पौष-सावर्णि (धर्म-सावर्णि), ४ रुद्र सावर्णि, ५ रौच्य-सावर्णि (देव-सावर्णि)** तथा **६ इन्द्र-सावर्णि**—इन मनुओं की भी पूजा होती है। इन मनुओं की पूजा से **'अनात्मा'** अर्थात् देह में जो आत्म-बुद्धि है, वह नष्ट हो जाती है और साधक की दृष्टि विशाल हो जाती है, वह अपनी संकुचित सीमा से बाहर आकर अपने आदि-पुरुषों के बारे में सोचने लगता है। इसलिए साधक को **चिरञ्जीवी मार्कण्डेय महर्षि** के शुभ नाम-स्मरण के बाद **चौदह मनुओं** के शुभ नामों का भी स्मरण करना अनिवार्य है। तभी साधक के विधि-वत् **प्राणायाम** करने के बाद **'श्रीदुर्गा-सप्तशती'** के पाठ एवं पूजा के लिए उसका **'वैवस्वत-मन्वन्तरे'**-सङ्कल्प सार्थक हो सकता है।

यह तो सभी साधक जानते हैं कि क्षिप्र प्रसाद देनेवाले मन्त्रों में **श्रीदुर्गा का मन्त्र** सर्वोत्तम है। अतः यह मन्त्र सभी को सिद्ध न हो जाए, इस विचार से **ब्रह्मा, वशिष्ठ, विश्वामित्र ऋषियों के शाप** भी हुए हैं, जिनके **विमोचन** के लिए पहले निम्न प्रकार का **विनियोग** पढ़ना चाहिए—

ॐ अस्य श्रीचण्डिकायाः ब्रह्मा-वशिष्ठ-विश्वामित्र-शाप-विमोचन-मन्त्रस्य वशिष्ठ-नारद-सम्वाद-सामवेदाधिपति-ब्रह्मणः ऋषयः। सर्वैश्वर्य-कारिणी श्रीदुर्गा शक्तिः। चरित-त्रयं (ऐं ह्रीं क्लीं) बीजं। ह्रीं शक्तिः। त्रिगुणात्म-स्वरूपा-चण्डिका-शाप-विमुक्तौ मम सङ्कल्पित-कार्य-सिद्ध्यर्थे पाठे विनियोगः।

उक्त **विनियोग** के बाद विधिवत् **ऋष्यादि-न्यास, कर-षडङ्ग-न्यास, श्रीदुर्गा का ध्यान** और उनका **मानस-पूजन** कर अधिकांश साधक **श्रीदुर्गा-सप्तशती** के **पञ्चम अध्याय** के **'देवा ऊचुः—नमो देव्यै महा-देव्यै, शिवायै सततं नमः'** (**विशुद्ध चण्डी'- पृ० ८५**) से प्रारम्भ करके **'भक्ति-विनम्र-मूर्तिभिः'** (**'विशुद्ध चण्डी'-पृ० ८८**) तक का पाठ करते हैं।

कुछ साधक लोग निम्न १८ मन्त्रों का जप करते हैं। प्रत्येक मन्त्र के अन्त में **'ब्रह्मा-वशिष्ठ-विश्वामित्र-शापेभ्यः विमुक्ता भव'**—इस पद का उच्चारण करना चाहिए। यथा —

१ ॐ ह्रीं रीं रेतः-स्वरूपिण्यै मधु-कैटभ-मर्दिन्यै ब्रह्मा-वशिष्ठ-विश्वामित्र-शापेभ्यः विमुक्ता भव।

२ ॐ श्रीं बुद्धि-स्वरूपिण्यै महिषासुर-सैन्य-नाशिन्यै ब्रह्मा-वशिष्ठ-विश्वामित्र-शापेभ्यः विमुक्ता भव।

३ ॐ रं रक्त-स्वरूपिण्यै महिषासुर-मर्दिन्यै ब्रह्मा-वशिष्ठ-विश्वामित्र-शापेभ्यः विमुक्ता भव।

४ ॐ क्षुं क्षुधा-स्वरूपिण्यै देव-वन्दितायै ब्रह्मा-वशिष्ठ-विश्वामित्र-शापेभ्यः विमुक्ता भव।

५ ॐ छां छाया-स्वरूपिण्यै दूत-सम्वादिन्यै ब्रह्मा-वशिष्ठ-विश्वामित्र-शापेभ्यः विमुक्ता भव।

६ ॐ शं शक्ति-स्वरूपिण्यै धूम्र-लोचन-घातिन्यै ब्रह्मा-वशिष्ठ-विश्वामित्र-शापेभ्यः विमुक्ता भव।

७ ॐ तृं तृषा-स्वरूपिण्यै चण्ड-मुण्ड-वध-कारिण्यै ब्रह्मा-वशिष्ठ-विश्वामित्र-शापेभ्यः विमुक्ता भव।

८ ॐ क्षां क्षान्ति-स्वरूपिण्यै रक्त-बीज-वध-कारिण्यै ब्रह्मा-वशिष्ठ-विश्वामित्र-शापेभ्यः विमुक्ता भव।
९ ॐ जां जाति-स्वरूपिण्यै निशुम्भ-वध-कारिण्यै ब्रह्मा-वशिष्ठ-विश्वामित्र-शापेभ्यः विमुक्ता भव।
१० ॐ लं लज्जा-स्वरूपिण्यै शुम्भ-वध-कारिण्यै ब्रह्मा-वशिष्ठ-विश्वामित्र-शापेभ्यः विमुक्ता भव।
११ ॐ शं शान्ति-स्वरूपिण्यै देव-स्तुत्यै ब्रह्मा-वशिष्ठ-विश्वामित्र-शापेभ्यः विमुक्ता भव।
१२ ॐ श्रं श्रद्धा-स्वरूपिण्यै सकल-फल-दायिन्यै ब्रह्मा-वशिष्ठ-विश्वामित्र-शापेभ्यः विमुक्ता भव।
१३ ॐ कां कान्ति-स्वरूपिण्यै राज्य-वर-प्रदायै ब्रह्मा-वशिष्ठ-विश्वामित्र-शापेभ्यः विमुक्ता भव।
१४ ॐ मां मातृ-स्वरूपिण्यै अनर्गल-महिम-सहितायै ब्रह्मा-वशिष्ठ-विश्वामित्र-शापेभ्यः विमुक्ता भव।
१५ ॐ हीं श्रीं दुं दुर्गायै सर्वैश्वर्य-कारिण्यै ब्रह्मा-वशिष्ठ-विश्वामित्र-शापेभ्यः विमुक्ता भव।
१६ ॐ ऐं हीं क्लीं नमः शिवायै अभेद्य-कवच-स्वरूपिण्यै ब्रह्मा-वशिष्ठ-विश्वामित्र-शापेभ्यः विमुक्ता भव।
१७ ॐ क्रीं कालै कालि हीं फट् स्वाहायै ऋग्वेद-स्वरूपिण्यै ब्रह्मा-वशिष्ठ-विश्वामित्र-शापेभ्यः विमुक्ता भव।
१८ ॐ ऐं हीं क्लीं महा-काली-महा-लक्ष्मी-महा-सरस्वती-स्वरूपिण्यै त्रिगुणात्मिकायै दुर्गा-देव्यै नमः।

कुछ साधक निम्न-लिखित एक ही मन्त्र का आदि और अन्त में सात बार जप करके शापोद्धार करते हैं—**ॐ हीं क्लीं श्रीं क्रां क्रीं चण्डिका-देव्यै शाप-नाशानुग्रहं कुरु कुरु स्वाहा।**

अन्य कुछ साधक **सप्तशती** के १३ : १, १२ : २, ११ : ३, १० : ४, ९ : ५, ८ : ६— इस क्रम से अध्यायों का पाठ करते हैं तथा अन्त में **सातवें अध्याय** का दो बार पाठ करते हैं।

जो भी हो, **महर्षि-वन्दना, मनु-पूजा** एवं **शापोद्धार** तथा **उत्कीलन** प्रायः सभी साधक लोग करते हैं। **उत्कीलन** के भी कई मन्त्र हैं। सबसे प्रसिद्ध मन्त्र है—**ॐ श्रीं श्रीं क्लीं हूं ओं ऐं क्षोभय मोहय उत्कीलय उत्कीलय ठं ठं।**

शापोद्धार एवं **उत्कीलन** से **आत्मा, जगत्** और **ब्रह्म** का एकीकरण होता है अर्थात् साम्यावस्था का दर्शन मिलता है, वही **मुक्ति** है।

दुर्गा-पूजा के प्रारम्भ में **भगवती दुर्गा** के वैष्णव-रूप का ध्यान किया जाता है। अतः **'चिदम्बर-संहिता'** के अनुसार पहले **'अर्गला'** का ही पाठ किया जाता है, बाद में **'कीलक'** और अन्त में **'कवच'** का। **दक्षिण-भारत** के **तमिलनाडु** में इसी विधान की महत्ता का प्रदर्शक **'चिदम्बरम्'** नामक नगर है, जहाँ **शिव-शक्ति के मिलन** का दिग्दर्शक **श्रीनटराज का दिव्य मन्दिर** है। संस्कृत-व्याकरण के अष्टाध्यायी के रचयिता **महर्षि पाणिनि** एवं **दुर्गा देवी** के अन्तरङ्ग उपासक **महर्षि कात्यायन** को इसी क्षेत्र में सिद्धि प्राप्त हुई, ऐसी किंवदन्ती है।

उक्त क्रम से **कवच** द्वारा **आत्म-रक्षा** कर **दुर्गा का आवाहन** आदि करना चाहिए। **'कवच'** में कुछ साधक लोग **'वन-दुर्गा'** को प्रधानता देते हैं। उनके अनुसार **'नौ दुर्गाओं'** के नाम इस प्रकार हैं —

प्रथमा वन - दुर्गेति, द्वितीया शूलिनी मता। तृतीया जात-वेदा च, चतुर्थी शान्तिरिष्यते।।
पञ्चमी शबरी चैव, षष्ठी ज्वालेति गीयते। सप्तमी लवणा चेति, अष्टम्यां आसुरी मता।।
नवमी दीप-दुर्गेति, नव-दुर्गाः प्रकीर्तिताः।।

उक्त **नव-दुर्गाओं की पूजा** का विधान भिन्न-भिन्न है। अतः **'सप्तशती'** के साधक इनके स्थान पर **भगवती दुर्गा** का ही **आवाहन-पूजनादि** करते हैं।

जैसा कि हमने प्रारम्भ में सूचित किया है, मनुओं के विधानानुसार ही **दुर्गा-पूजा** करनी चाहिए। इस प्रकार दक्षिण के हों या उत्तर के सभी साधकों को **'मन्वादि-काल'** का ज्ञान होना आवश्यक है। सभी शाक्तों को **'काल-पुरुष'** की गति तथा अपनी **'प्राण-शक्ति'** की गति को जानते हुए कर्म करते रहना चाहिए, परन्तु फल की कामना न हो, यही क्रम मोक्ष-प्रद है।

नमो देव्यै महा-देव्यै, शिवायै सततं नमः। नमः प्रकृत्यै भद्रायै, नियताः प्रणताः स्म ताम्॥

यही देवों की प्रार्थना है। हाँ, भू-देव शाक्तों की प्रार्थना है। कर्मेन्द्रियों को वश में करने से ज्ञानेन्द्रियों का विकास होता है। कर्मेन्द्रियों को वश में लाने के लिए **'काल'** की गति जानना आवश्यक है।

'सौर' सिंह मास एवं **'सौर' कन्या मास**—ये दोनों मास **दुर्गा माता की पूजा** के लिए श्रेष्ठ हैं। अन्य मासों में दिव्य साधक कैसे **दुर्गा-पूजा** करते हैं—यह ज्ञातव्य है। सभी दिनों में **राहु-काल** की घड़ियों में साधना करनी चाहिए। **प्राण** व **अपान** की गति रोकते हुए साम्यावस्था में अपनी शक्ति को लाना चाहिए, जिससे **देवी के दर्शन** सुलभ हों। **देवी की गायत्री** का १०८ बार जप करने से साधक की शक्ति स्वतः साम्यावस्था में आ जाती है। ध्यान **सिंहासन-गता देवी** का रहे। यथा—

ॐ सिंहस्था शशि-शेखरा मरकत-प्रख्यैश्चतुर्भिर्भुजैः,
शङ्खं चक्र-धनुः-शराश्च दधती नेत्रैस्त्रिभिः शोभिता।
आमुक्ताङ्गद - हार - कङ्कण-रणत्-काञ्ची-रणन्-नूपुरा,
दुर्गा दुर्गति-हारिणी भवतु नो रत्नोल्लसत्-कुण्डला॥

इस उपासना में **षडङ्गों का न्यास** मुख्य है। **ध्यान** के बाद **गुरु** से आज्ञा लेकर **पूजा, जप** और **होम** करना चाहिए। **पूजा** सदैव दिन में **राहु-काल** में ही करनी चाहिए। रात के समय **राहु-काल** नहीं होता। **दुर्गा देवी** स्वयं **अग्नि**-स्वरूपा हैं। अतः सूर्य की किरणों के साथ उनका सम्बन्ध **'नित्या'** के रूप में जुड़ा हुआ है। हाँ, **पशु** और **वीर** साधकों के लिए रात में भी **दुर्गा की पूजा का विधान** है। उनके लिए रात की निम्न घड़ियाँ निर्दिष्ट हैं—

रवि : छः से साढ़े सात तक। **सोम** : तीन से साढ़े चार तक। **मङ्गल** : डेढ़ से तीन तक। **बुध** : बारह से डेढ़ तक। **गुरु** : साढ़े दस से बारह तक। **शुक्र** : नौ से साढ़े दस तक। **शनि** : साढ़े सात से नौ तक।

पुत्र, धन, नए साधन, अच्छा वर अथवा वधू आदि सभी लौकिक सुखों की प्राप्ति के लिए **रात की घड़ी** श्रेष्ठ मानी गई है।

चाहे पूजा दिन में हो या रात में, **नव दुर्गाओं के शुभ नाम-स्मरण** के बाद **आठ वसु, नौ**

निधि, दश दिशाधिपति, एकादश रुद्र, द्वादश आदित्य—इनके साथ **अश्विनी देवताओं** की भी उपासना करनी चाहिए।

आठ वसुओं के शुभ नाम हैं—**१ भव, २ ध्रुव, ३ सोम, ४ विष्णु, ५ अनिल, ६ अनल, ७ प्रत्यूष** और **८ प्रभव**।

नौ निधियों के सम्बन्ध में विभिन्न मत हैं। कुछ लोग **नौ ग्रहों के प्रीति-कारक नौ रत्नों** की आराधना करते हैं। यथा—**सूर्य : माणिक्य। चन्द्रमा : मुक्ता। मङ्गल : प्रवाल। बुध : कौस्तुभ या हरा हीरा। गुरु : पुष्प-राग। शुक्र : वज्र। शनि : नीलम। राहु : गोमेधक (गोमेद)। केतु : वैदूर्य।**

अधिकांश साधक **नौ मुद्राओं** को ही **नौ निधि** के रूप में मानते हैं। यथा—**१ खड्ग, २ खेट, ३ चक्र, ४ गदा, ५ चाप, ६ बाण, ७ तर्जनी, ८ अनल** और **९ योनि-मुद्रा**। इनमें **'योनि-मुद्रा'** मुख्य-तम है।

दश दिशाधिपति और उनकी शक्तियों का विवरण

दिक्	अधिपति	शक्ति
प्राक् (पूर्व)	इन्द्र	ऐन्द्री
आग्नेयी (दक्षिण-पूर्व)	अग्नि	स्वाहा या स्वधा
दक्षिण	वराह	वाराही
नैर्ऋति (दक्षिण-पश्चिम)	निर्ऋति	चित्ता (खड्ग-हस्ता)
पश्चिम	वरुण	वारुणी
वायव्य (उत्तर-पश्चिम)	वायु	मृग-वाहिनी
उदीची (उत्तर)	कुबेर	कौमारी
ऐशानी (उत्तर-पूर्व)	ईशान	शूलिनी
ऊर्ध्व दिक्	ब्रह्मा	ब्रह्माणी (सरस्वती)
अधो दिक्	विष्णु	वैष्णवी (लक्ष्मी)

ऐशानी (उत्तर-पूर्व) दिशा में **दुर्गा-माता** की **शूलिनी शक्ति** विराजमान है, जो सर्वोपरि मानी गई है। इस शक्ति का उदय प्रतिदिन विभिन्न घड़ियों में होता है, वह इस प्रकार है—

वार	दिक्	घड़ी
रवि	पश्चिम या उत्तर-पश्चिम	प्रातः छः से साढ़े दस
सोम	पूर्व या दक्षिण-पश्चिम	प्रातः छः से नौ

मङ्गल	उत्तर या उत्तर-पश्चिम	प्रातः छः से साढ़े दस
बुध	उत्तर या उत्तर-पूर्व	प्रातः छः से मध्याह्न बारह
गुरु	दक्षिण या दक्षिण-पूर्व	प्रातः छः से मध्याह्न दो
शुक्र	पश्चिम या दक्षिण-पश्चिम	प्रातः छः से साढ़े दस
शनि	पूर्व या दक्षिण-पूर्व	प्रातः छः से नौ

उपर्युक्त घड़ियों में उक्त दिशाओं में **शूलिनी शक्ति का आवाहन** करने से वाञ्छित फल मिलता है।

प्रसङ्ग-वशात् यहीं **योगिनी माता** का भी उल्लेख आवश्यक है। **अग्न्यात्मक दुर्गा** के **'नवार्ण-मन्त्र'** की सिद्धि के लिए **महा-गणपति, क्षेत्र-पाल, बटुक-भैरव** तथा **योगिनी माता** का अनुग्रह प्राप्त करना अनिवार्य है। **महा-गणपति, क्षेत्र-पाल** एवं **बटुक-भैरव** के पूजा-विधान प्रसिद्ध हैं, परन्तु **योगिनी माता** रहस्य-मयी हैं। उनके सम्बन्ध में प्रकाश डालनेवाले ग्रन्थ भी कम हैं। यह ज्ञातव्य है कि किसी भी **मन्त्र की सिद्धि** के लिए अपने **जन्म-नक्षत्र की देवता** के **अनुकूल तिथि, वार, योग** और **करण** का शुभ मिलन होना चाहिए। वार के अनुसार २७ **नक्षत्रों** के २७ **योग** होते हैं। इनके अतिरिक्त १५ **तिथियाँ** और **करण** हैं। **सूर्य** और **चन्द्र** के बीच की जो दूरी है, उसी के अनुसार **'तिथि'** बनती है और **चन्द्र की वृद्धि** तथा **क्षय** के अनुसार **'योगिनी'** की दिशा बनती है। यथा—

शुक्ल-पक्ष	दिक्	कृष्ण-पक्ष	दिक्
प्रथमा (एकादशी)	प्राक् (पूर्व)	षष्ठी	प्राक् (पूर्व)
द्वितीया (द्वादशी)	उत्तर	सप्तमी	दक्षिण-पूर्व
तृतीया (त्रयोदशी)	दक्षिण-पूर्व	अष्टमी	दक्षिण
चतुर्थी (चतुर्दशी)	दक्षिण-पश्चिम	नवमी	दक्षिण-पश्चिम
पञ्चमी (पूर्णिमा)	दक्षिण	दशमी	पश्चिम
षष्ठी	पश्चिम	प्रथमा (एकादशी)	उत्तर-पश्चिम
सप्तमी	उत्तर-पश्चिम	द्वितीया (द्वादशी)	उत्तर
अष्टमी	उत्तर-पूर्व	तृतीया (त्रयोदशी)	उत्तर-पूर्व
नवमी	आकाश	चतुर्थी (चतुर्दशी)	आकाश
दशमी	भूमि	पञ्चमी	भूमि

देवी दुर्गा माता का शुभ वचन है—

अष्टम्यां च चतुर्दश्यां, नवम्यां चैक - चेतसः। श्रोष्यन्ति चैव ये भक्त्या, मम माहात्म्यमुत्तमम्॥

योगिनी माता के अनुग्रह से साधक यह जान सकते हैं कि **कृष्ण-पक्ष की अष्टमी की 'वाराही'-शक्ति** ही **शुक्ल-पक्ष की अष्टमी** की **'शूलिनी'-शक्ति** के रूप में अनुग्रह करती हैं। अतः **कृष्ण-पक्ष की अष्टमी से शुक्ल-पक्ष की अष्टमी तक श्रीदुर्गा-सप्तशती का पारायण** करना सिद्धि-प्रद होता है।

इसी प्रकार **कृष्ण-पक्ष की नवमी से शुक्ल-पक्ष की अष्टमी तक पारायण** करने से **'खड्ग-धारिणी' माता के दर्शन** मिलते हैं तथा साधक मृत्यु तक को जीत पाता है। उसे **चिरञ्जीवी मार्कण्डेय महर्षि** का सायुज्य भी मिल जाता है क्योंकि माता के **खड्ग में काल (मृत्यु) की शक्ति** निहित है। **'सप्तशती'** के अनुसार—

कालश्च दत्तवान् खड्गं, तस्याश्च चर्म निर्मलम्।

दश दिशाओं में योगिनी की स्थिति जानने के बाद **एकादश रुद्रों** के शुभ नामों का स्मरण व पूजन होना चाहिए। **एकादश रुद्र** हैं—**१ अज, २ एक-पात्, ३ अहिर्बुध्न्य** (ज्ञान-दाता के रूप में प्रसिद्ध), **४ विरूपाक्ष, ५ रैवत, ६ हर** (शम्भु महा-देव के रूप में प्रसिद्ध), **७ बहु-रूप, ८ त्र्यम्बक** (महाराष्ट्र के 'नासिक' क्षेत्र में प्रतिष्ठित), **९ सावित्र, १० जयन्त** और **११ पिनाकी।**

प्रत्येक **रुद्र** का अलग-अलग पूजा-विधान होने पर भी **माता की पूजा** में ये सब **अङ्ग-देवताओं के रूप में** ही पूजे जाते हैं।

आदित्य १२ हैं। यथा—**१ चैत्र मास** में **'त्वष्टा'** या **'वेदज्ञ', २ वैशाख** में **'इन्द्राग्नी'** या **'तपन', ३ ज्येष्ठ** में **'इन्द्र', ४ आषाढ़** में **'विश्वेदेव'** या **'मधु-रूपी सूर्य', ५ श्रावण** में **'महा-विष्णु'** या **'गर्भास्त', ६ भाद्र** में **'यम', ७ आश्विन** में **'हिरण्य-रेता', ८ कार्तिक** में **'दिवाकर', ९ मार्गशीर्ष** में **'मृगशिरा', १० पौष** में **'पूषा', ११ माघ** में **पितृ देवता 'अर्यमा अरुण', १२ फाल्गुन** में **'भग सूर्य'।**

अब तक हमने **८ वसुओं, ९ निधियों, १० दिक्-पालों, ११ रुद्रों** तथा **१२ आदित्यों** का वर्णन किया। इन सबका प्रकाश **'अश्विनी'** द्वारा ही होता है। **अश्व-मुखवाले दो देव** सदा एक साथ घूमते रहते हैं। यही कारण है कि **वेद** में **सर्व-व्यापी देवता** के रूप में इनकी स्तुति की गई है—**'अश्विनौ व्यात्तम् इष्टं मनिषाण, अमुं मनिषाण, सर्वं मनिषाण।**

'मनिषाण'—प्रार्थना का तात्पर्य है कि अमुक फल की प्राप्ति के लिए आप ही हमारे मार्ग-दर्शी बनें। **दिन-रात, पुण्य-पाप, सूर्य-चन्द्र, प्रकाश** और **तम, ज्ञान** व **अज्ञान**—इस प्रकार **मनुष्य की उच्च गति तथा अधो-गति दोनों के द्योतक के रूप में अश्विनी देवताओं को ज्योतिश्चक्र में स्थान** मिला है। वह स्थान **ध्रुव** है, अव्यय है।

'गीता' में कहा गया है कि **'अक्षराणां अकारोऽस्मि'। 'प्रणव'** में **अ-कार** का अर्थ परमात्मा है, **म-कार** का जीवात्मा है। बीच में जो **उ-कार** है—वही **अश्विनी** है। अर्थात् **परमात्मा** और **जीवात्मा** को जोड़नेवाले जुड़वा देवता हैं।

'अश्व' का अर्थ यह भी है कि **'श्व'** अर्थात् कल का नहीं, आज का ही है। अर्थात्

यह देवता आवाहन-मात्र से सन्तुष्ट होकर तुरन्त वर्तमान काल में ही फल प्रदान करता है। **'अश्व'** का अर्थ घोड़ा भी है। शक्ति-मान के रूप में घोड़ा सर्वोच्च माना गया है; इसीलिए 'अश्व-शक्ति' (हॉर्स-पावर-शब्द) विद्युत्-शक्ति की माप के लिए प्रयुक्त होता है।

'महा-भारत' का **'हय-शिर उपाख्यान'** प्रसिद्ध है। हय-मुखवाले एक असुर ने **ब्रह्मा** से सभी **वेदों** और **शास्त्रों** का अपहरण कर लिया। उसे मारने के लिए **ब्रह्मा** ने **विष्णु की स्तुति** की। **विष्णु** ने **अश्विनी देवताओं** द्वारा **'हय-ग्रीव'** का स्वरूप धारण किया और उस असुर का वध कर **वेदों की रक्षा** की तथा **ब्रह्मा** को उन्हें पुनः प्रदान किया।

अश्विनी देवताओं का निवास ऊँचे पहाड़ों पर, घने जङ्गलों पर तथा युद्ध-क्षेत्रों में रहता है। अतः **ज्योतिश्चक्र** में **अश्विनी-नक्षत्र** के चारों चरण **मेष-राशि** में, **सिंह-राशि** में तथा **धनु-राशि** में निहित हैं। **मेष-राशि** इन देवताओं की चर-राशि है; **सिंह-राशि—** स्थिर-राशि है; **धनु-राशि—** उभय-राशि है। अतः **धनु-राशि** में **मूल-नक्षत्र** में इन देवताओं का **आवाहन** करने से साधक को शीघ्र ही मन्त्र-सिद्धि मिल जाती है।

'तन्त्र' का निर्देश है—**'मूलेन आवाहयेत् देवीम्'**। **अश्विनी देवताओं** के स्थान का सप्तम स्थान **ज्योतिश्चक्र** में मनुष्यों का होता है; **मेष-राशि** का सप्तम स्थान **तुला-राशि** है; **सिंह-राशि** का सप्तम स्थान **कुम्भ-राशि** है तथा **धनु-राशि** का सप्तम स्थान **मिथुन-राशि** है। ये तीनों मनुष्य-राशियाँ हैं।

'प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा, ब्रह्म तल्लक्ष्य उच्यते।

'प्रणव' का स्थान सर्वोपरि है। उसी **प्रणव** के द्योतक **धनु-राशि** में **आत्मा-रूपी शर** से **ब्रह्म-लक्ष्य** की प्राप्ति के लिए **अश्विनी देवताओं की कृपा** अनिवार्य है।

'मेष' का पर्याय-वाची **'अज'** है। **अश्विनी-देवता** ही **'अजा'** अर्थात् **प्रकृति** है। **प्रकृति** के तीन गुण हैं—१ **रजस्**, २ **सत्त्व**, ३ **तमस्**, जिनके रूप क्रमशः **लोहित, शुक्ल** और **कृष्ण** हैं—इन तीनों रूपों को ही दिखा कर **प्रकृति— पुरुष** को अपने वश में कर लेती है।

अश्विनी की कृपा से **प्रकृति— पुरुष** के वश में आ जाती है। उसी को वश में लाने के लिए **'वाग्-भव'**, **'योनि'** और **'काम-कला'** को जानना आवश्यक है। बीच में **'योनि'** होती है। अतः **'योनि-मुद्रा'** से ही देहली-दीप न्याय के अनुसार **'वाग्-भव'** तथा **'काम-कला'** पर नियन्त्रण मिल सकता है। **'योनि-मुद्रा'** के लिए दोनों हाथों, दोनों पैरों तथा दोनों गुह्याङ्गों का उपयोग किया जाता है। तभी मन के नियन्त्रण से **वाक्-सिद्धि** आदि मिलेगी।

सिंह-राशि में **अश्विनी** का स्थान होने से **श्रीदुर्गा सिंह-वाहिनी** के रूप में पूजी जाती हैं। यहीं **'प्राणाः यस्य तु मातरः पितृ-कुलं यस्याऽस्त्यपानात्मकम्'** का ध्यान होता है। अतः **सिंह-राशिस्थ 'अश्विनी'-देवता का अनुग्रह** प्राप्त होने पर **सिंह-राशि** के सप्तम स्थान पर **कुम्भ-राशि में गुरु का साक्षात्कार** मिल जाता है।

किसी भी पूजा के लिए **'कलश-स्थापन'** आवश्यक है। **कलश के मुख में विष्णु, कण्ठ में**

रुद्र तथा **मूल में ब्रह्मा** का और **मध्य-स्थान में मातृ-गणों का आवाहन** किया जाता है। **कुम्भ-राशि के गुरु** के ध्यान से **सहस्रार-स्थित चन्द्रमा के रस** अर्थात् **अमृत का पान** साधक करने लगता है। **मार्कण्डेय महर्षि** की प्रार्थना—**'मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्'**—सफल हो जाती है। अतः **कुम्भ-राशि-स्थित गुरु** के अनुग्रह से ही साधक को **मन्त्र-सिद्धि** मिलती है। **ब्रह्मा-रूप गुरु** के ध्यान से **'महा-काली'** का, **विष्णु-रूप गुरु** के ध्यान से **'महा-लक्ष्मी'** का और **रुद्र-रूप गुरु** के ध्यान से **'महा-सरस्वती'** का अनुग्रह मिलता है। इन तीनों शक्तियों का एक-साथ अनुग्रह प्राप्त करने के लिए **अश्विनी देवताओं की कृपा** अनिवार्य है।

वेदों में **अश्विनी** के कई रूप वर्णित हैं, परन्तु साधक के लिए एक ही रूप पर्याप्त है। वह है— **जगदम्बा का स्वरूप**। अन्य रूपों के ध्यान से साधक को **मन्त्र-सिद्धि** मिलना तो दूर, उसकी अधो-गति अवश्य होती है। अतः **अश्विनी देवताओं** के कई रूप होने पर भी **जगदम्बा-स्वरूप** ही हमारा रक्षक है।

अश्विनी में सृष्टि करने की 'चर-शक्ति' **मेष-राशि** में है, अतः वह **अजा, लोहित-शुक्ल-कृष्ण-रूपा** है। स्थिति करने की 'स्थिर-शक्ति' **सिंह-राशि** में है, अतः वह **सिंह-वाहिनी** व **चक्र-धारिणी** है। संहार करने और पुनः सृष्टि करने की 'उभय शक्ति' **धनु-राशि** में है, अतः वह **वाराही** एवं **खड्ग-धारिणी** है। ये ही **अश्विनी के तीन जगदम्बा-स्वरूप** हैं।

'चामुण्डा' का **खड्ग-हस्ता** के रूप में ध्यान करना विहित है, परन्तु **खड्ग-हस्ता** के प्रथम स्वरूप **'वाराही'** के ध्यान के बिना **चामुण्डा का ध्यान** फल-प्रद नहीं होता। अतः **'वाराही'-यन्त्र** में उनका पूजन करना आवश्यक है। पूजन के अन्त में—

गुह्याति-गुह्य-गोप्त्री त्वं, गृहाणास्मत्-कृतं जपम्। सिद्धिर्भवतु वाराहि! त्वत्-प्रसादान् महेश्वरि!।।'

उक्त श्लोक-पाठ के साथ **देवी के चरण-कमलों** में **'तीर्थ'** समर्पित करें तथा उस **'तीर्थ'** का अपने एवं अन्य भक्त-जनों के शिरों पर **प्रोक्षण** करें। इससे **देव-ऋण, पितृ-ऋण, ऋषि-ऋण** से मुक्ति मिलती है। **'भगवद्-गीता'** के १५वें **'पुरुषोत्तम'** नामक अध्याय में **अश्विनी देवता** की प्रशंसा की गई है। **'महा-भारत'** में **'नकुल'** और **'सहदेव'— अश्विनी देवता** के ही अंश हैं।

योग-प्रक्रिया से विचार करें, तो भी **अश्विनी** का स्थान बड़ा ऊँचा है। जो मन के द्वारा ध्यान किया जाता है, वही वाणी द्वारा प्रकट किया जाता है। अतः **मन** और **वाक्**—इनके प्रवर्तक **'अश्विनी'** है। कार्य करने में दोनों हाथों, दोनों पैरों, उदर और लिङ्ग का साथ-साथ उपयोग होता है। वहाँ भी **अश्विनी देवता का अनुग्रह** अनिवार्य है। **अश्विनी देवता 'ज्वाला-मालिनी'** हैं। अतएव **सत्य-स्वरूपा** हैं। **आकाश** और **पृथ्वी, ऋत** और **सत्य, वायु** और **अग्नि, सूर्य** और **सत्य**।

योग-प्रक्रिया में **यम, नियम** और **आसन** के बाद **प्राणायाम** का स्थान है। **अश्विनी देवता** का सम्बन्ध हृदयस्थ नाड़ियों से है। **कुम्भक प्राणायाम** द्वारा ही हृदयस्थ नाड़ियों का चालन किया जा सकता है। हृदय-स्थान में **एक सौ नाड़ियाँ** स्थित हैं। उनमें एक ही नाड़ी **परमात्मा**

का सम्बन्ध दिला सकती है। उसी नाड़ी का चालन **अश्विनी देवता के अनुग्रह** से होता है तथा **ऊर्ध्व-केशी चामुण्डा माता का अनुग्रह** भी प्राप्त होता है।

अश्विनी देवता के साक्षात्कार के लिए **प्राणायाम** सदैव करते रहना चाहिए। **सूर्य** और **चन्द्र** की गति को रोकने से ही **ज्ञानानन्द-मय अश्विनी देवता का उदय सुषुम्ना नाड़ी में** होता है। तब **जगन्माता की कृपा** से साधक **तीनों कालों का ज्ञानी** हो जाता है। कहा भी है—

नव-दुर्गां महा-कालीं, ब्रह्म-विष्णु-शिवात्मिकाम्। त्रिकाल-ज्ञान-सम्पन्नां, नमामि भुवनेश्वरीम्।।

यह तो सभी साधक जानते हैं कि **'शक्ति'** के अनुग्रह के बिना **'शिव'** का चालन नहीं होता। परन्तु यही प्रश्न है कि वह **'शक्ति'** है कहाँ? उसका चालन कैसे किया जाए? इस प्रश्न का समाधान भी **अश्विनी** द्वारा ही मिल जाता है। **'श्वा'** का अर्थ है कुत्ता। हम देखते हैं कि कुत्ता एक जगह से दूसरी जगह यों ही दौड़ेगा, फिर थक जाने पर उसी जगह वापस आ जाएगा। यही उसकी मूल प्रवृत्ति है। इसी प्रकार जो साधक अपक्व है, वह भी **'श्वा'** की तरह **'पुनरपि जननम्, पुनरपि मरणम्'** के मार्ग में दौड़ता रहता है। **अश्विनी देवता की कृपा** मिल जाने पर वह **श्वा-प्रवृत्ति** समाप्त होने लगती है; **मन** अपने अन्दर देखने लगता है; **परमात्मा** के जानने के लिए इच्छुक हो जाता है; अपने को **'म-कार'** के रूप में अर्थात् इस **विशाल ज्ञान-सागर में एक बिन्दु** की तरह समझने लगता है। तभी 'मु'-स्वरूपा **स्कन्द-माता** के दर्शन के लिए वह अन्तर्मुखी बन जाता है।

अश्विनी स्वयं **ज्ञान-रूपा** है; अतः साधक को यथार्थ ज्ञान देती है। **दश महा-विद्याओं** का ज्ञान भी मिल जाता है। **दश महा-विद्याओं** के नाम हैं—

काली तारा षोडशी च, भुवनी भैरवी तथा। छिन्नमस्ता च धूम्रा च, बगला गजिनी कलीम्।।

'गजिनी'— 'मातङ्गी'-नाम से और **'कलीम्'— 'कमला'**-नाम से प्रसिद्ध हैं।

स्वधा-प्रवृत्तिवाली **'श्वा'**-बुद्धि के नियन्त्रण से **स्वाहा**-प्रवृत्तिवाली **'अश्विनी'**-देवता का अनुग्रह मिल जाता है। जहाँ भी, जो भी आहार मिलता है, उसे कुत्ता खा लेता है; जो कोई नया सामने आता है, उसे देखते ही भूँकने लगता है; अपनी रक्षा के लिए दूसरों को काटने के लिए दौड़ता है —ये तीनों बातें **'श्वा'**-प्रवृत्तियाँ हैं। इनसे छुटकारा पाने के लिए **'अश्व-मुखी' अश्विनी का अनुग्रह** अनिवार्य है।

अपनी जीभ पर नियन्त्रण रखना सर्व-प्रथम कर्तव्य है। जो भी आहार **जगदम्बा की सेवा** में समर्पित हो, उसी को **'प्रसाद'** के रूप में स्वीकारना चाहिए। जो मन्त्र **गुरु-मुख** से प्राप्त हो, उसी का **जप** करना चाहिए। साधक-मण्डली को छोड़कर अन्यों की बैठक में शामिल नहीं होना चाहिए। अपने **मन** और **वाणी** पर नियन्त्रण रखना साधक के लिए अत्यावश्यक है। **जगदम्बा की तुष्टि** के लिए सब कुछ **बलिदान** करने की प्रवृत्ति भी आवश्यक है।

'देवी-सूक्त' में **जगदम्बा के स्वरूप का विस्तृत विवेचन** किया गया है, परन्तु उस स्वरूप का

प्रकाश तथा विमर्श **अश्विनी की कृपा** से ही मिल सकेगा। अतएव **चामुण्डा का ध्यान** भी निम्न श्लोक से ही करना श्रेयः-प्रद है—

ऊर्ध्व - केशि विरूपाक्षि, मधु-शोणित-भक्षिणि! तिष्ठ देवि! शिखा-मध्ये, चामुण्डे! ह्यपराजिते!।।

'ऊर्ध्व-केशि'-शब्द से **'अश्विनी'** द्वारा साधक की **सृष्टि एवं संहार की प्रवृत्ति** का उल्लेख किया गया है। यदि ये दोनों प्रवृत्तियाँ **ऊर्ध्व-मुखी** हों, तो **स्थिति की प्रवृत्ति** भी अपने आप **ऊर्ध्व-मुखी** हो जाती है, एतदर्थ **'श्वा'-प्रवृत्ति** का नियन्त्रण हो तथा **अश्व-प्रवृत्ति** का विकास हो, यह आवश्यक है।

उपनिषदों में भोक्ता के रूप में **अश्विनी देवता** का ही चित्रण किया गया है—

आत्मानं रथिनं विद्धि, शरीरं रथमेव तु। बुद्धिं तु सारथिं विद्धि, मनः प्रग्रहमेव च।।

इन्द्रियाणि हयान् आहुः, विषयांस्तेषु गोचरान्। आत्मेन्द्रिय-मनो-युक्तं, भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः।।

अर्थात् **आत्मा, इन्द्रिय, मन** आदि से युक्त जो **बुद्धि-तत्त्व** या **ज्ञान-तत्त्व** अर्थात् **'अश्व-मुखी'-प्रवृत्ति** है, वही **अश्विनी— भोक्ता** है। शरीर तो जड़ है, इसलिए वह **भोक्ता** नहीं हो सकता। शरीर के अन्दर जो **जीवात्मा** है, उसके द्वारा **परमात्मा** ही सभी काम करा लेता है। अतः कर्म करते रहना ही **जीवात्मा का स्वरूप** है—वही **'सुरथ'** है। जीवात्मा द्वारा कर्म कराते-कराते उसे **'समाधि'** पर पहुँचाना **परमात्मा** का ध्येय है—यही उसकी लीला है। एतदर्थ **सङ्कोच-विकास, ज्ञान-अज्ञान, प्रकाश-अन्धकार** आदि दो-दो प्रवृत्तियाँ साथ-साथ चाहिए। उन्हीं प्रवृत्तियों का जीता-जागता स्वरूप **'अश्विनी'** है।

'श्रीदुर्गा-सप्तशती' का निम्न श्लोक सभी भक्तों को ऐश्वर्य देनेवाला है—

शूलेन पाहि नो देवि! पाहि खड्गेन चाम्बिके! घण्टा-स्वनेन नः पाहि, चाप-ज्या-निःस्वनेन च।।

उक्त श्लोक के आधार पर **स्थिर-योगिनी** के सम्बन्ध में **अश्विनी-देवताओं की कृपा** के फल-स्वरूप अब विचार किया जाएगा।

जगदम्बा चामुण्डा की **चार मुख्य अङ्ग-देवता** प्रसिद्ध हैं—**१ महागण-पति, २ क्षेत्र-पाल, ३ बटुक-भैरव** और **४ योगिनी**। इन चारों का अनुग्रह प्राप्त होने पर ही **चामुण्डा का प्रसाद** मिल सकता है। **महा-गण-पति, क्षेत्रपाल** और **बटुक-भैरव** के मन्त्र और तन्त्र प्रसिद्ध हैं, परन्तु **योगिनी** के बारे में गुरु-शिष्य-परम्परा के रूप में कुछ रहस्य हैं, जिन्हें पाठकों के हितार्थ यहाँ प्रस्तुत किया जाता है।

शाक्तों के लिए अपने-अपने विशेष **पञ्चाङ्ग** हैं। **चामुण्डा देवी** के चार ही अङ्ग हैं। **पञ्चाङ्ग** का मतलब है—**१ तिथि, २ वार, ३ नक्षत्र, ४ योग** और **५ करण**। चार अङ्गों का मतलब है—**१ दिक्, २ तिथि, ३ दिन** और **४ शूल**। ये ही चार अङ्ग निम्न तालिका में दिए गए हैं—

स्थिर योगिनी माता

दिन	दिक्	शुक्ल-पक्ष	कृष्ण-पक्ष
सोम-शनि	प्राची	१-११	६
मङ्गल-बुध	उत्तर	२-१२	७
गुरु-शनि	आग्नेय	३-१३	८
शुक्र-सोम	नैर्ऋति	४-१४	९
गुरु	दक्षिण	५-१५	१०
शुक्र-रवि	पश्चिम	६	१-११
मङ्गल-रवि	वायव्य	७	२-१२
—	आकाश	९	४-१४
—	पृथ्वी	१०	५-१५
बुध	ईशान	८	३-१३

(१) चौथा अङ्ग **'शूल'** है, जो **योगिनी माता** का बोधक है। दशों दिशाओं में **योगिनी माता** पूजनीया हैं।

(२) **दिन** एवं **तिथि** का सम्मिलन ही मुख्य है। तदनुसार उक्त दिशा में **योगिनी-माता** की पूजा करे।

(३) मोक्षार्थी साधक या अन्यों के हित में पाठ करनेवाला **शुक्ल-पक्ष की नवमी** एवं **कृष्ण पक्ष की चतुर्थी** व **चतुर्दशी** में सप्तशती का पारायण करे।

(४) भोगेच्छु साधक **शुक्ल-पक्ष की दशमी** और **कृष्ण पक्ष की पञ्चमी** और **अमावास्या** के दिन **पारायण** करे।

उक्त चार अङ्गों का मिलन होने पर **'स्थिर-योगिनी'** की कृपा से **दुर्गा माता की असीम कृपा** मिल जाती है। इन चारों का मिलन कभी-कभी ही होता है। अतः साधक को चाहिए कि **शुक्ल-पक्ष की चतुर्थी, पञ्चमी, चतुर्दशी** और **अमावास्या** में नियमित रूप से मन और कार्य की स्थिरता के साथ ऊँचे स्वर में **'श्रीदुर्गा-सप्तशती' का 'पारायण'** किया करें।

साधक के शरीर में **नौ ग्रहों की स्थिति** इस प्रकार होती है— **गुरु-ग्रह** कण्ठ-भाग के ऊपर, **मङ्गल** और **छाया-ग्रह केतु** कटि के नीचे, **शनि** और **राहु** पृष्ठ-भागों पर, **सोम** और **बुध** शिरो-भाग पर, **शुक्र** मुख-मण्डल पर एवं **सूर्य** दोनों हाथों पर स्थित माने गए हैं। इसी प्रकार **शरीर पर नौ ग्रहों का न्यास** करने से साधक इन **ग्रहों के कु-प्रभाव** से बच जाता है। तब **नव-ग्रहों के न्यास** के बाद **अश्विनी-देवताओं का न्यास** अपने कानों पर करना चाहिए। इस

न्यास के फल-स्वरूप **शनि** और **राहु** तुष्ट हो जाते हैं तथा **पितरों, ऋषियों और देवों का अनुग्रह** मिल जाता है।

अक्षांश पर **ग्रहों का न्यास** करना चाहिए। **'अक्षांश'** को ठीक करने के लिए अपने **शरीर, शिर** और **कण्ठ**—इन तीनों भागों को स्थिर रखना होता है। **नवार्ण मन्त्र** में और अन्य मन्त्रों में **'अक्षांश'** ही मान-दण्ड है। जब तक **अश्विनी देवताओं की कृपा** नहीं मिलती, तब तक दोनों हाथों, दोनों पैरों, दोनों कानों एवं पृष्ठ-भाग और शिरो-भाग को एक साथ सम रखना कठिन होता है।

वात, पित्त और **कफ**—इन तीनों नाड़ियों को, **वाक्, काय** और **मन**—इन तीनों करणों को, **पृष्ठ-भाग, शिरो-भाग, कण्ठ-भाग**—इन तीनों भागों को समान रूप से चलाने का अभ्यास करना **नवार्ण मन्त्र** के साधक के लिए आवश्यक है।

सतत अभ्यास से जब ये तीनों वश में आ जाते हैं, तब **वागीश्वरी** अथवा **महा-काली-बीज** का शिखा में, **भुवनेश्वरी** अथवा **माया-बीज** का पृष्ठ-भाग पर, **कामेश्वरी** अथवा **महा-सरस्वती-बीज** का नाभि पर ध्यान करना सुलभ हो जाता है। इस प्रकार अभ्यास न हो, तो साधक **'गन्ध-वही गर्दभः'** बन जाता है अर्थात् अज्ञानी गधा बन जाता है।

'श्रीदुर्गा-सप्तशती' का प्रत्येक अक्षर आग के कण के समान है। अतः कोई भी साधक यदि उसके एक भी अक्षर का अर्थ हृदयङ्गम कर ले, तो उस साधक के सभी पाप तत्क्षण दूर हो जाएँ। **मार्कण्डेय महर्षि** ने कठिन तपस्या के बाद **तीनों बीज-मन्त्रों का न्यास** और **अनुष्ठान** जाना था। इसी से **ऋषि** अर्थात् **मन्त्र-द्रष्टा** के रूप में वे माननीय हैं।

ब्रह्मा की बहन **दुर्गा, विष्णु** की बहन **पार्वती** तथा **रुद्र** की बहन **सरस्वती** हैं। **नवार्ण मन्त्र** के अनुसार **ब्रह्मा** ने **महा-काली** की, **विष्णु** ने **महा-लक्ष्मी** की एवं **रुद्र** ने **महा-सरस्वती** की उपासना की है। ये ही उन **त्रि-देवों की अनन्य शक्तियाँ** हैं। अतएव **नवार्ण मन्त्र** के सभी अक्षरों से **व्यापक न्यास** करना आवश्यक है।

जैसे रश्मि का सूर्य से अलग अस्तित्व नहीं है, वैसे ही **नवार्ण मन्त्र** का अस्तित्व **मेरु-दण्ड** से **शिखा** तक व्याप्त है। **मन्त्र** के सभी अक्षर **अग्नि-स्वरूप** हैं। **ध्यान** भी **अनलात्मिका, त्रि-नेत्रा दुर्गा** का ही किया जाता है। **पहले बीज-मन्त्र** का ठीक तरह से उच्चारण **कण्ठ, तालु** और **शिखा** से करना चाहिए। **दूसरे बीज-मन्त्र** का उच्चारण **पृष्ठ-भाग** से लेकर **दाहिनी आँख** से करना चाहिए। **तीसरे बीज-मन्त्र** का उच्चारण **नाभि** से लेकर **बाँई आँख** से करना चाहिए। तत्पश्चात् **अश्विनी देवताओं का अनुग्रह** मिलेगा। तभी **कूष्माण्डा, स्कन्द-माता, कात्यायनी** और **काल-रात्रि का अनुग्रह** भी मिलेगा। तदनन्तर **महा-गौरी का अनुग्रह** मिलेगा, तभी **सिद्धि** मिलती है।

नवार्ण-मन्त्र का जप, होम, अनुष्ठान आदि **गुरु के निर्देशन** में ही करना चाहिए। केवल पुस्तकीय ज्ञान के आधार पर किसी भी **मन्त्र की सिद्धि** करने का प्रयत्न न करें। पुस्तक तो विधि-विधान और उसके महत्त्व को जानने का एक साधन-मात्र है। **साध्य देवता का अनुग्रह**

प्राप्त करने के लिए **गुरु की शरण** लेनी अति आवश्यक है। **नवार्ण मन्त्र** के लिए भी यह नियम अनिवार्य है। **नवार्ण मन्त्र** की सभी **अङ्ग-देवता रौद्रांश** की हैं। अतः खेल समझ कर जो कोई साधक **गुरु-कृपा** प्राप्त किए बिना इन देवताओं का ध्यान करता है, उसे वे उग्र शक्तियाँ शाप दे देती हैं।

दक्षिण में **नवार्ण मन्त्र** की सभी **अङ्ग-देवताओं को कन्याओं के रूप में** मानते हैं। **दक्षिण भारत** के अन्तिम छोर पर स्थित **'कन्या-कुमारी देवी'** का ध्यान-मात्र साधक अपनी **आराध्य देवता** के रूप में किया करता है।

उत्तर-भारत में **चामुण्डा देवता** का निम्न **गायत्री मन्त्र** प्रसिद्ध है—

'रुद्र-भूतायै विद्महे खड्ग-हस्तायै धीमहि। तन्नः चामुण्डा प्रचोदयात्।'

किन्तु **दक्षिण भारत** में बहु प्रचलित **गायत्री-मन्त्र** है—

'कात्यायनाय विद्महे, कन्या-कुमारि धीमहि, तन्नो दुर्गिः प्रचोदयात्।'

कुमारी के रूप में दुर्गा की उपासना करने से सभी रोग दूर हो जाते हैं। **अभीष्ट फल** भी मिल जाता है।

नेपाल का राज-परिवार **चामुण्डा** का परम भक्त है। **नव-रात्र** के दिनों में **कन्याओं की ही पूजा** करता है। एतदर्थ कन्याओं के लिए एक विशेष निवास-स्थान भी राजधानी काठमाण्डू में राज-परिवार द्वारा सुरक्षित है। **दुर्गा देवी** के कई रूप सर्वत्र व्याप्त हैं। सिद्ध पुरुष **'जगदम्बा' के रूप में दुर्गा की उपासना** करते हैं। साधकों को **कुमारी के रूप में उपासना** करना श्रेयस्कर है।

सभी नारियों को **दुर्गा** के अवतार के रूप में ही मानना चाहिए। **रावण** ने **सीता** को अपनाना चाहा, उसका सत्यानाश हो गया। **दुर्योधन** ने **द्रौपदी** की अवज्ञा की, उसका समूल विनाश हो गया। अतः साधक का पहला अभ्यास यही होना चाहिए कि सभी नारियों को **दुर्गा माता** के रूप में मानें। उनकी पूजा करे या न करे, परन्तु उनकी अवज्ञा कदापि न करे। किसी भी परायी स्त्री को अपनाने का प्रयत्न कभी न करे। नारी-जगत् को **दुर्गा** के रूप में मानने की बात पर हम इसीलिए जोर देते हैं कि कुछ लोग **'मकार-पञ्चक'** और **'दुर्गा-पूजा'** के नाम पर **शाक्त**-समुदाय को बदनाम करने पर तुले रहे हैं। अतः हमें बहुत सावधान रहना चाहिए।

'नवार्ण मन्त्र' की शक्ति का विकास उसी दिन से प्रारम्भ हुआ, जब **प्रलय-काल में आदि-पुरुष नारायण वट-पत्र पर शिशु के रूप में** सोए हुए थे। **'श्रीदुर्गा-सप्तशती'** का **आदि चरित** भी **सोए हुए विष्णु को जगाने के लिए** ही जपा जाता है। यह भी देखें कि **ब्रह्मा** का वीजाक्षर एक है, उनकी **शक्ति** का वीजाक्षर दूसरा है। **रुद्र** का वीजाक्षर एक है तथा उनकी **शक्ति** का वीजाक्षर दूसरा है, परन्तु **विष्णु** तथा उनक **शक्ति** का वीजाक्षर दोनों एक ही हैं। अतः

वैष्णवी दुर्गा माता की अवहेलना करने पर नाश ही हो जाता है।

अब हम **दक्षिणाम्नाय** की **'दुर्गा-पूजा-पद्धति'** पर और प्रकाश डालने का यत्न करेंगे। इस पद्धति में **अद्वैत-वाद** का स्फुरण भी है। **आचार्य, मन्त्र** और **देवता** अर्थात् **ज्ञाता, ज्ञान** और **ज्ञेय**—इन तीनों का एकी-भाव अथवा **अद्वैत** हो जाता है। यही **मन्त्र-सिद्धि** है। **'आचार्यादिह देवतां समधिकां अन्यां न मन्यामहे'**—यही सिद्धान्त **दक्षिणाम्नाय** का है। **गुरु** से ही **मन्त्र, मन्त्र** से ही **देवता** —इस क्रम से **गुरु** को प्रथम स्थान मिल जाता है।

चामुण्डा के मन्त्र में यही बात है। **ऋषि, छन्दस्** और **देवता** का समन्वय हो जाने पर ही सिद्धि मिल सकती है। निरीश्वर **सांख्य**-मत के अनुसार भी **प्रकृति के तीनों गुणों की साम्यावस्था** ही मोक्ष है। सेश्वर **शाक्त**-मत में **गुरु, गुरु की शक्ति** और **मन्त्र की शक्ति देवता**—इन तीनों की साम्यावस्था ही मोक्ष है, सर्व-सिद्धि है और सब कुछ है।

नवार्ण मन्त्र में **प्रणव** की बात हमने पहले कही थी। चामुण्डा के तीनों वीजाक्षर **प्रणव** के विकसित रूप ही हैं। इनके स्थान पर **प्रणव** का उच्चारण कर **चामुण्डा** का **षडक्षरी मन्त्र** (ॐ चामुण्डायै विच्चे) बनता है, जो **सद्यः फल-प्रद** माना गया है। **चामुण्डा** के दोनों पार्श्वों पर **'नाग-राज'** की स्थिति मानी गई है। **'नाग-राज' के जागरण** के लिए **षडक्षरी मन्त्र** का ही प्रयोग किया जाता है। **चामुण्डा** की **'शिवा'** के रूप में पूजा करने की पद्धति है। उस रूप में **चामुण्डा** के चार ही हाथ हैं, जिनमें क्रमशः **पाश, अंकुश, वर** तथा **अभय**-मुद्रा हैं।

कुमारी के रूप में **चामुण्डा की पूजा** करने की पद्धति में केवल **एकाक्षरी** का प्रयोग किया जाता है। साधक को **स्कन्द-माता कुमारी के एकाक्षरी मन्त्र** से भी अभीष्ट फल मिल जाता है। **दक्षिण** के कुछ **शाक्त-पीठों** में यह भी देखा गया है कि **नवार्ण मन्त्र** के प्रत्येक अक्षर के उच्चारण के साथ **१००८ बार विभिन्न द्रव्यों से होम** किया जाता है। ऐसे होमों से साधक के कई कष्ट दूर हो जाते हैं।

दुर्गा का मन्त्र दुर्गम तो है ही, लेकिन साधक के मन के अनुसार **दुर्गा के कई रूप** माने गए हैं। उनमें **बाला का स्वरूप** भी एक है। **माता, कुमारी**— इन दोनों के मन्त्रों से **बाला दुर्गा का मन्त्र** कई साधक जपते रहते हैं, क्योंकि उस मन्त्र में केवल दो ही वीजाक्षरों का प्रयोग होता है तथा उन दोनों वीजाक्षरों से साधक की **कुण्डलिनी-शक्ति का जागरण** तुरन्त हो जाता है।

दशाक्षरी मन्त्र का जप भी दक्षिण के कई साधक करते रहते हैं। उनका मानना है कि **दुर्गा के दस मुख** हैं और **दस पाद** भी हैं। उन लोगों का कहना है कि **नवार्ण** भी **दशाक्षरी** से ही निकले हैं। कई प्रसिद्ध शाक्तों ने यह मान भी लिया है कि **नवार्ण मन्त्र** जपने के पहले **दशाक्षरी** का कम-से-कम एक सौ आठ बार जप करना चाहिए। उन लोगों का अनुभव है कि **दशाक्षरी** के प्रथम पाँच अक्षरों से सभी **कर्मेन्द्रियों का दमन** हो जाता है तथा द्वितीय पाँच अक्षरों से **ज्ञानेन्द्रियों का विकास** हो जाता है।

दशाक्षरी के जपने पर इसलिए जोर दिया जाता है कि साधक को अपने स्वरूप की पहचान के लिए **ब्रह्म-ग्रन्थि, विष्णु-ग्रन्थि** तथा **रुद्र-ग्रन्थि**—इन तीनों ग्रन्थियों से अपने को विमुक्त करना चाहिए। **ब्रह्मा ग्रन्थि-मुक्ति** से सभी इच्छाओं पर विजय मिलती है। **विष्णु-ग्रन्थि-विमुक्ति** से पारिवारिक सङ्कटों से रक्षा होती है तथा **रुद्र-ग्रन्थि की विमुक्ति** से अज्ञान नष्ट होता है। इन तीनों ग्रन्थियों से एकदम मुक्ति पाने के लिए **दशाक्षरी मन्त्र** ही सिद्ध मन्त्र है। उस मन्त्र की सिद्धि के बाद **नवार्ण मन्त्र की सिद्धि** सुलभ हो जाती है।

यहाँ यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि **नवार्ण** तथा **दशाक्षरी** में **रुद्र** का स्थान निश्चित है। चाहे

विष्णु का मन्त्र हो, या **ब्रह्मा** का, या अन्य किसी **देवी-देवता** का, सबमें **रुद्र** को ही एक निश्चित स्थान दिया जाता है। **रौद्रांश** में, जैसा कि कुछ साधकों को भ्रम है, कोई भयङ्कर रूप नहीं है। उसमें **अज्ञान-नाशक ज्ञान-सत्ता का स्फुरण** मात्र है। उस **ज्ञान-सत्ता के स्फुरण से ही आनन्द** मिलता है। **परमात्मा** स्वयं **ज्ञानानन्द-स्वरूप** है। अतः जीवांश भी **ज्ञान** और **आनन्द** की प्राप्ति के लिए तन्त्र, मन्त्र और यन्त्र आदि की खोज में जमीन-आसमान एक करने लगता है। यदि किसी **गुरु की असीम कृपा** से **दशाक्षरी मन्त्र** का उपदेश मिले, तो जीव का ज्ञान विकसित होता है। वह असीम आनन्द प्राप्त करता है तथा आस्य-पाद-दशका **जगन्माता चामुण्डेश्वरी का अनुग्रह** भी प्राप्त कर लेता है।

जो साधक **योगिनी-माता का अनुग्रह** पाता है, उसे **इन्द्रिय-निग्रह** अपने आप हो जाता है। उसके लिए प्रयत्न करने की आवश्यकता नहीं होती। **योगिनी-माता** दशों दिशाओं में व्याप्त हैं। **योगिनी-माता** के स्थिर होने पर ही **साधक की इच्छा-शक्ति** विकसित होती है। वही विकास **अश्विनी देवताओं का स्वरूप** है।

'महा-भारत' में जब **श्रीकृष्ण** ने **कौरवों** के साथ युद्ध करने के सम्बन्ध में **पाण्डवों** का अभिप्राय जानना चाहा, तो **नकुल-सहदेव** ने, जो **अश्विनी के पुत्र** थे, स्पष्ट कहा था कि 'कौरवों के विनाश के लिए आपका अवतार हुआ है, अतः हमसे सलाह लेने का यह अभिनय हमें पसन्द नहीं है।'

अब हम **अश्विनी देवता** के **'अक्ष-स्वरूप'** की ओर ध्यान देंगे। मनुष्य का **मन** हमेशा चञ्चल रहता है। **मन** को स्थिर रखने के लिए रीढ़ की हड्डी को ठीक तरह से सीधा रखकर **'पद्मासन'** जमाना ही **'अक्ष-स्वरूप'** है। इससे मन एकाग्र होने लगता है।

अक्षांश पर घूमनेवाले ग्रहों का ज्ञान रखना आवश्यक है। नौ ग्रहों में **राहु** और **केतु छाया-ग्रह** हैं। **शनि का छाया-ग्रह— 'राहु'** है तथा **मङ्गल का 'केतु'**। अतः **शनि** और **मङ्गल** का स्वभाव जानना पर्याप्त है। **सूर्य** की उष्णता सबको वांछनीय है। जो **सूर्य** श्रीरङ्गम में दिखाई देता है, वही प्रयाग में और नई दिल्ली में प्रकाशमान रहता है। **सूर्य** के उदय और अस्त की घड़ी में अन्तर हो सकता है, परन्तु उसका प्रभाव सर्वत्र रहता है।

नवार्ण मन्त्र में **विष्णु ऋषि, उष्णिक् छन्द** तथा **भुवनेश्वरी बीज** के सतत ध्यान से **सूर्य** के कु-प्रभाव से हमें मुक्ति मिल जाती है। **चन्द्र** को **मन का अधिनायक** मानते हैं—**'चान्द्र-बलं तु निखिल-ग्रह-वीर्य-बीजम्।'** अर्थात् **सभी ग्रहों को वीर्य देनेवाला चन्द्रमा** है। **रुद्र ऋषि, अनुष्टुप् छन्द** एवं **काम-बीज** के ध्यान से **जगदम्बा के भक्त चन्द्रमा के कु-प्रभाव से विमुक्त** हो जाते हैं।

मङ्गल का प्रभाव नाड़ियों पर होता है। कुछ लोग कुत्ते की तरह इधर-उधर भटकते रहते हैं, उनका मन कभी भी सन्तुष्ट नहीं होता। **'भोगा न भुक्ताः, वयमेव भुक्ताः'**—भोग-लालसा में सब कुछ खो बैठते हैं, परन्तु **ब्रह्मा ऋषि, गायत्री छन्द** तथा **वागीश्वरी बीज** के ध्यान से **जगदम्बा** के भक्त **मङ्गल तथा छाया-ग्रह 'केतु' का कु-प्रभाव** दूर कर लेते हैं।

अब रहा **'सौम्य'** अर्थात् **बुधो बुध— सोम का पुत्र** है। कुछ लोगों की बुद्धि-शक्ति हमेशा मन्द रहती है। गणित और विज्ञान आदि गहन विषयों को समझ नहीं पाते। **'काम-बीज'** पर निरन्तर ध्यान रखनेवाले साधकों की **बुद्धि-शक्ति** सदा तीक्ष्ण रहेगी। **राहु** के कु-प्रभावों से बचने के लिए **'विच्चे'** का सार्थक ध्यान करते रहना चाहिए।

इस प्रकार **नवार्ण मन्त्र— नौ ग्रहों के कु-प्रभाव से बचने के लिए सिद्ध मन्त्र** है।

* * *

साधक का संवाद

१०. कुल-धर्म

(१)

दूकान से छुट्टी पाकर मैं अपनी बैठक में घुस रहा था कि पीछे से किसी ने आवाज दी—**'शर्मा जी!'** मैंने घूमकर देखा कि **सेठ मगनीराम** हाँफते हुए सीढ़ियाँ चढ़ रहे हैं। बरामदे में आकर गहरी साँस लेकर उन्होंने कहा—भाई, मर गया! तुम्हारे मकान में आना क्या होता है, शूली पर चढ़ जाना होता है।

बैठक के भीतर ले जाकर मैंने उन्हें सोफे पर बैठाया और कहा—मलाई खाकर अपने को इतना मोटा क्यों बना लिया है? कहो, यहाँ आने का क्यों कष्ट किया है? मुझे अपने यहाँ क्यों नहीं बुला लिया?

मगनीराम—भाई, आज कैसे बुलाता? यों तो जब चाहता था, बुला लेता था।

मैंने कहा—खैर, कहिए, क्या आज्ञा है?

मगनीराम—तुम्हारी **वीणा** की शादी की तिथि निश्चित हो गई है। देश से चिट्ठी आई है, तुम्हारी **भाभी** ने लिखा है कि **शर्मा जी** को लेकर ही आना। अगर वे न आवें, तो तुम भी न आना। मैं **वीणा** की शादी तुम दोनों के बिना ही कर लूँगी। लो, पढ़ो यह चिट्ठी।

यह कहकर उन्होंने एक चिट्ठी मेरे आगे रख दी और चुपचाप सोफे पर लुढ़क गए।

मैंने चिट्ठी उठा ली और उसे खोलकर सरसरी निगाह से देख गया। **मगनीराम** को चिट्ठी देते हुए मैंने कहा—**भाभी** की आज्ञा को कैसे टाल सकता हूँ? परन्तु आप आगे-आगे चलें। मैं बाद में आऊँगा। ठीक विवाह के समय पहुँच जाऊँगा।

मगनीराम इतना सुनते ही उठकर बैठ गए और बोले—सो नहीं होगा। तुम्हें साथ न देखकर, वह मुझे घर में न घुसने देगी। उसका स्वभाव तो तुम जानते ही हो। जब तुम चलोगे, तब मैं भी चलूँगा।

मैंने कहा—पहले से नहीं जाओगे, तो वहाँ प्रबन्ध कौन करेगा?

मगनीराम—प्रबन्ध तो वह अपने आप करती है, उसमें किसी को हाथ नहीं डालने देती। हम लोग तो नेवतहारी से जाएँगे।

मैंने कहा—तो भी दो दिन पहले जाना चाहिए।

यह कहकर मैंने **पञ्चाङ्ग** उठाया और यात्रा का दिन निश्चित कर दिया। **मगनीराम** इससे बहुत खुश हुए और वे अपने घर चले गए।

मगनीराम मेरे मित्र ही नहीं, सब कुछ थे। उन्होंने पग-पग पर मेरी सहायता करके मुझे कलकत्ते का व्यापारी बना दिया और **भाभी** ने तो जब धन की आवश्यकता पड़ी, आँख मूँदकर हजारों की थैली चुपचाप थमा दी। ऐसी दशा में **वीणा** की शादी में क्यों न जाता। दो ही दिन के भीतर मैंने अपनी सारी व्यवस्था ठीक कर ली और शुभ मुहूर्त में **मगनीराम** के साथ मैं **राजस्थान** की यात्रा को चला।

जब मैं **मगनीराम** के नगर पहुँच गया और उनके घर पहुँच कर **भाभी जी** के चरण स्पर्श किए, तब उन्होंने अपने गुमाश्ते को सम्बोधित करके गद्‌गद् स्वर में कहा—'देख, **शर्मा** आया कि नहीं। तू कहता था कि नहीं आएगा, वह इस समय अकेला है। उसकी दुकान कौन सँभालेगा? फिर उन्होंने मेरी ओर मुँह करके कहा—इन्होंने तो खोंचेवालों से अपना काम चलाया होगा। इस लम्बी यात्रा में तुम भूखे ही रहे होगे। अच्छा, सबसे पहले तुम **स्नान-पूजन** करके अपने भोजन की तैयारी करो।

मैंने कहा—**भाभी,** मैं भूखा नहीं रहा, नहा-धो भी चुका हूँ। खा-पी भी चुका हूँ। मुझे काम बताइए।

भाभी ने कहा—खैर, आज रात को आराम करो, यात्रा के थके हो। तुम्हें काम क्या बताना है, तुम सब जानते-बूझते हो। तुम्हारे आ जाने से मेरी सारी चिन्ताएँ दूर हो गई हैं। कल से अपना देखना-भालना।

दूसरे दिन जब मैंने देखा-भाला, तब सब प्रबन्ध चौकस पाया। **भाभी** ने विवाह की ठीक-ठीक तैयारी कर ली थी। विवाह बड़ी धूम से हुआ। बरातवाले भी बड़े सज्जन निकले। नामी व्यापारी होते हुए भी वर के कुटुम्बियों में ब्राह्मणोचित सभी गुण विद्यमान थे। **वर के पिता** मुझे एक दिन गाँव के बाहर **देव-दर्शनार्थ** अपने साथ लिवा ले गए। एकान्त स्थल में जाकर उन्होंने मुझसे कहा कि 'तुम तो **साधक** जान पड़ते हो।' यह बात उन्होंने इतने प्रभावोत्पादक ढङ्ग से कही कि मुझसे नाहीं नहीं करते बनी। अब वे एक अच्छी जगह पर बैठकर **धर्म-सम्बन्धी बातचीत** करने लगे। मैंने कुछ चकित-सा होकर कहा कि— मुझे तो आप पहले **मारवाड़ी ब्राह्मण** मिले हैं, जो अपने को **शाक्त** बताते हैं!

उन्होंने हँसकर कहा—आप दूर देश के निवासी हैं। आपको इसका पता कैसे लग सकता है? हम **गौड़ों** का **'शाक्त-धर्म'** में अपना एक अलग सम्प्रदाय है। **राजस्थान** में **'शाक्त-धर्म'** का जो व्यापक प्रचार दिखाई दे रहा है, भले ही यह **दक्षिणाचार** ही हो हमारे उसी **गौड़ सम्प्रदाय** का प्रभाव है।

मैंने कहा—परन्तु आपका वह सम्प्रदाय कहीं दिखाई तो नहीं देता।

वे बोले—यह दिखाई देने की चीज तो नहीं है। यह तो **'कुल-धर्म'** है और आज भी यह यहाँ के सद्-गौड़ परिवारों में आपको मिलेगा। हाँ, **राजस्थान** में इस समय वैश्य-भावना का प्राबल्य हो गया है। इससे हम लोगों का **'कुल-मार्ग'** बहुत कुछ दब गया है। यह भी एक कारण है कि आज-कल की नई रोशनी ने उसे और भी पीछे डाल दिया। परन्तु, ऐसा नहीं है कि उसका उन्मूलन हो गया हो। वह है और बहुत कुछ अपने मूल रूप में ही है। हाँ, बहुत जँचे हुए ही **साधक** हम लोगों में प्रवेश पा सकते हैं।

मुझे भले प्रकार भासित हो गया कि ये एक उच्च-कोटि के **साधक** जान पड़ते हैं। अतएव इनसे **रहस्य-सम्बन्धी प्रश्न** करना चाहिए। यह सोचकर मैंने **'शाक्तों के अर्चन'** की बात छेड़ दी।

तब उन्होंने हँसकर कहा—भाई, जो तुम पूछ रहे हो, वह तो इस तरह नहीं कहा जा सकता। मुझे उस विषय का उतना ज्ञान भी नहीं है। **गुरु-देव** ने जो बता दिया है, वह करता रहता हूँ। जब तुम स्वयं **साधक** हो, तब वह सब तुम भी जानते ही होगे। ऐसी दशा में क्या बताऊँ?

"यही कि **चक्रार्चन** का क्या रहस्य है?" मैंने आग्रह के भाव से कहा।

"रहस्य की बात तो मैं नहीं जानता। **अर्चन** जिस तरह करता हूँ, केवल वही जानता हूँ।

रहस्य की बात तो **महात्मा** लोग जानें।''

मैंने दृढ़ता से कहा—आप भी तो एक **महात्मा** हैं।

''यहाँ तुम भूल रहे हो। मैं तो **मैया का एक क्षुद्र सेवक** भर हूँ। घर-गृहस्थी के काम काज से जब छुट्टी पाता हूँ, तब रात-बिरात जो कुछ भी बन पड़ा, कर लेता हूँ।''

उनके इस प्रकार के उत्तरों से मैं निराश-सा हो चला और वह बात उनसे छिपी न रह सकी। उन्होंने बहुत मधुर स्वर में कहा—भैया, जो बात तुम जानना चाहते हो, वह **मैया की कृपा** होने पर ही जान पाओगे; किसी के बताने से नहीं। असल बात यह है कि आजकल हम लोग **'स्व-धर्म'** छोड़ बैठे हैं। इसी से ठीक राह नहीं मिल रही है।

मैंने कहा—आपका क्या मतलब है?

''यही कि आज के **गृहस्थ— साधु-सन्तों** के पीछे फिर रहे हैं। वे समझते हैं कि उनके जरा-सा इशारा कर देने पर उनको **मुक्ति का मार्ग** मिल जाएगा और उन्हें कुछ करना-धरना नहीं पड़ेगा।''

''तब वे क्या करें?'' मैंने जरा शुष्कता के साथ पूछा।

''स्व-धर्म का पालन करें। आखिर गृहस्थ का भी तो अपना कोई धर्म होता है? साधु-सन्तों को भोजन देकर नमस्कार करें बस, **मुक्ति** आदि तो अपना **'धर्म'-पालन** करने पर ही मिलेगी, साधुओं की गद्दियों का चक्कर काटने से नहीं।''

''उनका वह **स्व-धर्म** क्या है?'' मैंने कुछ क्षोभ के साथ पूछा।

''यही तो जानने की बात है।'' उन्होंने गम्भीर होकर कहा—''परन्तु इस महत्व की ओर आज कोई भी ध्यान नहीं दे रहा है। **'स्व-धर्म'** अर्थात् **'गृहस्थ'-धर्म** का लोगों की निगाह में कोई मूल्य नहीं है।''

उनकी बात को मैं हृदयङ्गम नहीं कर सका। अतएव मैंने उन्हीं की हाँ-में-हाँ मिलाते हुए कह दिया —आप यथार्थ ही कहते हैं। हम **गृहस्थ** लोग सचमुच यह नहीं जानते कि हमारा अपना भी कोई **धर्म** है, जो हमें इस **भव-सागर** से पार लगा सकता है।

वे कहते गए—जब तक हम **अपने धर्म** को भूले रहेंगे, तब तक हम **रहस्य की बातें जानने के अधिकारी** नहीं हो सकते। पहले **'स्व-धर्म'** के जानने का ही नहीं, उसके पालन करने का प्रयत्न होना चाहिए। **रहस्य के जानने का मार्ग** अपने-आप खुल जाएगा। किसी से पूछ-ताछ करने की आवश्यकता ही नहीं रह जाएगी।

मुझे ऐसा जान पड़ा कि वे ऊपर की बातों से मुझे टाल-सा रहे हैं और असली बात बताना नहीं चाहते। मैं मन-ही-मन खीझ-सा उठा।

मैंने कहा—परन्तु, **'गृहस्थ'-धर्म** का यथा-शक्ति सभी लोग पालन करते हैं।

''यदि ऐसा होता, तो फिर लोग **मुक्ति की खोज** में **साधु-सन्तों** के पीछे लगे न फिरते होते। यदि उनकी **अपने धर्म में आस्था** होती, तो आज संसार में **मनुष्य-पूजा** का बोल-बाला न होता। **'गृहस्थ'-धर्म** एक महान् धर्म है। इसी के द्वारा **'निःश्रेयस'** और **'अभ्युदय'** दोनों की सिद्धि प्राप्त होती है। हमारा **'कुल-धर्म'** ही रहस्य की भाषा में **'गृहस्थ'-धर्म** है।'' इतना कहते-कहते उनका मुख-मण्डल एक विलक्षण आभा से प्रदीप्त हो उठा। वे भावावेश में आकर धारा-प्रवाह भाषण-सा करने लगे।

उन्होंने कहा—''लोग **तन्त्रों** को पढ़ते नहीं हैं। **शाक्त उपासक** की **तन्त्रों** में बड़ी प्रशंसा है। **'मुण्डमाला तन्त्र'** के दूसरे पटल में **सदाशिव— माता** से इस प्रकार कहते हैं—**'हे देवि, शाक्त के बराबर दूसरा कोई नहीं है। वह स्वयं शङ्कर है, साक्षात् पर-ब्रह्म है। जो काली, तारा, भुवनेश्वरी,**

षोडशी, मातङ्गी, छिन्नमस्ता, बगला आदि की पूजा करता है, वह शिव नहीं तो और क्या होगा।' इसी प्रकार तीसरे पटल में कहा है—**'शाक्त साक्षात् शङ्कर का रूप है। वह चाहे जिस जाति में उत्पन्न हुआ हो। वह चाहे चाण्डाल, ब्राह्मण, शूद्र, क्षत्रिय, वैश्य किसी भी जाति में उत्पन्न हुआ हो। हे देवि, वे सभी शङ्कर हैं।'**

'निर्वाण-तन्त्र' में **गृहस्थ शाक्त-साधक** का यह धर्म बतलाया गया है —**'पाठ, होम, अतिथि-सेवा, देव-पूजा, पितृ-श्रद्धा, कुलाचार, तत्त्व-ज्ञान, निज स्त्री-पूजा** और **कुटुम्बियों के सम्मान में अनुरक्त रहना** गृहस्थ साधक का एकान्त धर्म है।' वहीं लिखा है —'जो साधक **सत्य-निष्ठ** और **जितेन्द्रिय** तथा **दया-शील** है और **कुलाचार** में निरत है, उस पर **कलि-काल का प्रभाव** नहीं पड़ता है। जो साधक **गुरु-भक्त, माता के भजन में निरत** और **अपनी पत्नी में अनुरक्त** है, उसको **कलि-काल** पीड़ित नहीं करता। जो **कुलाचार-रत साधक** कुटिलता, असत्य से दूर रहते हैं और **सदा पवित्र** तथा **दूसरों का उपकार** किया करते हैं, उनका **कलि-काल** दास हो जाता है। अतएव **शिव की आज्ञा** के अनुसार **शाक्त-साधक** का **सत्यवादी, जितेन्द्रिय, दयावान, गुरु-भक्त, मातृ-भक्त, स्व-पत्नी-अनुरक्त** और **परोपकारी** होना **परम धर्म** है। तभी साधक को अपनी **साधना में सिद्धि** मिल सकती है।'' यह कहकर वे चुप हो रहे।

मैंने कहा—आपके इस **सदुपदेश** से मुझे अनेक नई बातें ज्ञात हुई हैं और **'गृहस्थ'-धर्म** की तो बात आपने सर्वथा नई ही बताई है।

'नई बात तो कोई मैंने नहीं कही। ये सब बातें तो परम्परा-गत है।'

'परन्तु मुझे नहीं ज्ञात थीं। मैंने **'तन्त्र'**-ग्रन्थों का अध्ययन ही कहाँ किया है! क्या मैं आपसे एक बात पूछ सकता हूँ?'

'हाँ, हाँ, पूछिए।'

'क्या हमारे **सेठ जी** उपासक हैं?'

'हाँ, **दीक्षित** हैं। परन्तु उन्हें उतना अधिक प्रेम नहीं है, जितना उनकी पत्नी को। उनकी पत्नी एक **उच्च-कोटि के साधक की कन्या** हैं, सुपठित हैं और कर्म-काण्ड का उन्हें अच्छा अभ्यास तथा ज्ञान है।'

यह सुनकर मैं अवाक् रह गया क्योंकि **मगनीराम** और उनके परिवार के लोगों से मेरा वर्षों से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है, परन्तु इस सम्बन्ध में उन्होंने कभी चर्चा तक नहीं की। यद्यपि वे जानते थे कि मैंने **'शाक्त-दीक्षा'** ली है और **शाक्तों** से अधिकतर मिला-जुला करता हूँ।

उन्होंने कहा—आओ अब चलें, काफी देर हो गई है।

हम लोगों ने जाकर **देवता का दर्शन** किया और **जनवासे** लौट आए। खेद है कि समयाभाव के कारण मैं उनका अधिक सत्सङ्ग न कर सका। वे वास्तव में एक उच्च-कोटि के साधक थे। यहाँ यह कह देना भी उचित समझता हूँ कि उनसे मिलकर मेरी यह पुरानी धारणा दूर हो गई कि **गौड़ ब्राह्मणों में 'शाक्त-धर्म' के साधक** नहीं हैं। वास्तव में उनकी उनमें एक अच्छी बड़ी संख्या है और वे **'स्व-धर्म'** का सविधि दृढ़ता से पालन करते हैं। हाँ, यह अवश्य है कि वे अत्यन्त गुप्त रहते हैं।

(२)

विवाह के बाद मैं दो दिन और रुका रहा। उसके बाद मैंने **कलकत्ते** लौटने की **भाभी जी** से आज्ञा माँगी। **भाभी जी** जानती थीं कि **कलकत्ते** में मेरा काम सँभालनेवाला कोई दूसरा व्यक्ति नहीं है। अतएव उन्होंने अनुमति दे दी। मैं **कलकत्ते** लौट आया। मेरे आने के सात दिन बाद **सेठ जी** भी **कलकत्ते** आ गए। **भाभी जी** कोई एक महीना बाद आईं। उनके आने पर मैं उनसे

मिलने उनके घर पर गया। बड़ी देर तक बातचीत होती रही। अन्त में मौका पाने पर मैंने कहा—**भाभी,** यदि ढिठाई क्षमा करें, तो मैं आपसे कुछ निवेदन करूँ।

उन्होंने हँसकर कहा—हाँ हाँ, कहो, क्या कहते हो?

मैंने कुछ गम्भीर होकर कहा—**भाभी जी,** इस दुनिया में केवल आप ही को मैंने समझा था कि मुझसे कभी किसी तरह का पर्दा नहीं रखती हैं। परन्तु; अब मुझे कुछ जान पड़ता है कि आप भी मुझसे सब बातें नहीं कहती हैं, कुछ छिपाए अवश्य रहती हैं।

उन्होंने चकित-सा होकर कहा—**शर्मा,** तुम्हारा यह आरोप निराधार है। मैं एक तो किसी के साथ भेद-भाव नहीं रखती हूँ, पर तुमसे तो किसी तरह का रख ही नहीं सकती हूँ, क्योंकि मैं तुम्हारा उतना ही प्यार करती हूँ जितना **गोपी** का।

मैंने कहा—आप ठीक कहती हैं। यह सब सच है, परन्तु एक चीज आपके पास है, जिसका भेद आपने मुझ पर कभी प्रकट नहीं किया।

विस्मय-भरे विस्फारित नेत्रों से मेरी ओर देखते हुए उन्होंने मन्द स्वर में मुझसे पूछा—वह कौन-सी चीज है **शर्मा,** जिसकी चर्चा मैंने तुमसे कभी नहीं की?

मैंने कहा—वही अपनी **उपासना** की।

उन्होंने उसी तरह फिर पूछा—**उपासना?**

मैंने कहा—**भाभी जी,** अब छिपाना व्यर्थ है। आपके **समधी** ने मुझे बता दिया है। आप **'शाक्त'-धर्म** की **'एक श्रेष्ठ उपासिका'** हैं। मुझे दुःख हुआ इसलिए कि मुझको **शाक्त** जानकर भी आपने अपने **शाक्त** होने की बात कभी नहीं बताई।

उन्होंने अति मधुर हँसी हँसते हुए कहा—**शर्मा,** तुम्हारे पास कितना रुपया है? क्या तुमने कभी मुझसे बतलाया है? या और कभी किसी से उसकी चर्चा की है?

मैंने कहा—नहीं, कभी नहीं। लेकिन यदि आप पूछती तो मैं बता देता।

उन्होंने कहा—जब तुम अपने इस **नाशमान भौतिक धन** की बात छिपाए रखना उचित समझते हो, तब तुम किसी से कैसे आशा कर सकते हो कि वह अपने **उपासना-रूपी परम धन** की बात सबसे कहता फिरेगा! यह तो एक बहुत ही सीधी-सादी बात है। फिर तुमने कभी ऐसी कुछ जिज्ञासा भी नहीं की।

मैंने कहा—यह तो ठीक है, परन्तु आप जानती थीं कि मैंने **'शाक्त-धर्म' की दीक्षा** ली है और मेरा **'अभिषेक'** तक भी हो चुका है। तब भी आपने अपने को नहीं प्रकट किया।

उन्होंने कहा—हमारा **'कुलाचार'** ही ऐसा है। हम लोगों पर इस बात का प्रतिबन्ध है कि अपनी ओर से हम किसी पर अपनी उपासना की बात न प्रकट करें, चाहे वह **साधक** ही क्यों न हो और **साधक** ही क्या, वह **सिद्ध पुरुष** ही क्यों न हो।

मैंने कहा—यदि ऐसा है तो आपके **समधी** ने मुझ पर अपना भेद क्यों प्रकट किया? वे भी तो आपके **गौड़ सम्प्रदाय** के हैं।

उन्होंने कहा—इसका उत्तर वही दे सकते हैं। मैं तो अपने **'कुलाचार'** की बात जानती हूँ। सम्प्रदाय के एक होने से क्या होता है? हमारे मण्डल में बीसों परिवार हैं, परन्तु क्या मजाल है कि कोई हम लोगों को जान भी सके कि हम किसके उपासक हैं।

मैंने पूछा—क्या आपके **समधी** आपके

मण्डल के नहीं हैं?

उन्होंने कहा—मण्डल के क्या, वे तो हमारे मण्डल के सरगना हैं और जहाँ तक मैं जानती हूँ, वे भी **'कुलाचार'** का दृढ़ता से पालन करते हैं। मुझे आश्चर्य होता है कि उन्होंने तुमसे यह रहस्य क्यों प्रकट कर दिया!

मैंने हँसते हुए कहा—जितना स्त्रियाँ रहस्य को छिपा सकती हैं, उतना पुरुष नहीं।

उन्होंने कहा—नहीं, ऐसी बात नहीं। हमारे मण्डल के सभी व्यक्तियों को **'कुलाचार का पालन'** करना ही होगा, परन्तु उन्होंने यह नियम भङ्ग क्यों किया, इसका ठीक-ठीक उत्तर वही दे सकते हैं।

मैंने कहा—खैर, इस बात को जाने दीजिए। अब आप बताइए कि क्या अब भी आप मुझसे इस **रहस्य** को छिपाए रहेंगी?

उन्होंने कहा—मुझे छिपाना क्या है? जो बात तुम जान चुके हो, वह तो जान ही चुके हो। अब क्या छिपाना रहा?

मैंने कहा—मैं आपके **'गौड़ सम्प्रदाय'** की विशेषताओं को जानना चाहता हूँ।

उन्होंने कहा—यह सब तो पण्डित लोग जानें। मैं एक साधारण स्त्री हूँ। पढ़ी-लिखी भी उतना नहीं हूँ। **सम्प्रदाय की विशेषताएँ** मैं क्या बता सकती हूँ?

मैंने हँसते हुए कहा—फिर वही बात आप कर रही हैं। आपके **समधी जी** कहते थे कि आपके पूज्य पिताजी **'कुल-मार्ग'** के पूर्ण ज्ञाता थे और उन्होंने आपको भी सब प्रकार पूर्ण कर दिया है।

उन्होंने कहा—**समधी जी** ने जो कुछ कहा है, ठीक कहा है। मेरे **पिता जी** सचमुच ही **उच्च-कोटि के साधक** थे, परन्तु मैं भी उन्हीं की तरह पूर्ण हूँ, यह सर्वथा अतिशयोक्ति है।

मैंने कहा—हाँ, हो सकता है। परन्तु यह तो है ही कि आपको **'कुल-मार्ग'** का अच्छा ज्ञान है।

उन्होंने कहा—हाँ, **पिता जी की कृपा** से मैं अपनी **उपासना की बातें** जरूर जान गई हूँ, परन्तु **'कुल-मार्ग'** का पूर्ण ज्ञान मुझे हो, ऐसा नहीं है।

मैंने कहा—अच्छा, आप जितना जानती हैं, उतना ही मुझे बताने की कृपा करें।

उन्होंने कहा—ऐसी कोई बात नहीं है, जो तुम न जानते हो क्योंकि **'कुल-धर्म'** में सभी जगह **एक-रूपता** है; कहीं-कहीं देश-काल के अनुसार कुछ अन्तर हो गया है, परन्तु उसका **मूल रूप एक** ही है।

मैंने अति विनम्र होकर कहा—**भाभी जी,** मैं चाहे जो कुछ जानता होऊँ, उसकी ओर आप ध्यान न दें। मैं आपके मुख से आज कुछ **धर्मोपदेश** सुनना चाहता हूँ।

उन्होंने हँसकर कहा—**धर्मोपदेश** आचार्य लोग करते हैं। मैं आचार्य नहीं हूँ।

मैंने कहा—आप चाहे कुछ कहें, इससे तो आप इन्कार ही नहीं कर सकती हैं कि आप एक महान् **कुलज्ञ आचार्य की सुयोग्य कन्या** हैं।

उन्होंने कहा—यह तो ठीक है। मेरे **पिता जी** इस मार्ग के बहुत बड़े ज्ञाता थे। ज्ञाता ही नहीं, वे **सिद्ध महात्मा** भी थे। **'कुलाचार'** का ज्ञान उनका अपूर्व था। आज-कल के साधक साधना भले करते हों, परन्तु **'कुलाचार'** का ज्ञान बिरले ही में पाया जाता है। आप लोग अपने मन में भले ही यह समझते हों कि आपको कोई जानता नहीं है कि ये **कौल** हैं; परन्तु बाहरवाले जो आपके सम्पर्क में आ जाते हैं, तुरन्त ही

जान जाते हैं कि आप कैसे हैं और आपकी कैसी उपासना है। परन्तु हम लोगों के यहाँ ऐसा **'कुलाचार'** है कि साधक तक एक दूसरे को नहीं जानते हैं कि अमुक व्यक्ति साधक है।

मैंने कहा—आप ठीक कहती हैं। **उपासना को गुप्त रखने का सिद्धान्त** मैं मानता हूँ, परन्तु मैं इस सम्बन्ध में पूर्ण रूप से आप से सहमत नहीं हूँ।

उन्होंने कहा—तुम सहमत कैसे होगे? तुम लोग **'कुलाचार'** को छोड़ चुके हो, **'अवधूताचार'** का अनुसरण करते हो, जो **'कुलाचार'** से भिन्न है।

मैंने कहा—यह बात आपने अनोखी कही। यह **'अवधूताचार'** क्या चीज है?

उन्होंने कहा—**'अवधूताचार'** एक प्रकार का स्वेच्छाचार है। इस आचार में शास्त्र-निर्दिष्ट **'कुलाचार'** की प्रायः अवहेलना की जाती है।

मैंने कहा—अच्छा, अब आप यह बताने की कृपा करें कि आपके **'कुलाचार' में पूजन** किस तरह होता है? तब शायद मैं इन दोनों आचारों का भेद समझ पाऊँ।

उन्होंने कहा—पूजन में कोई भेद नहीं है। वही **'तन्त्रोक्त निशा-पूजा'** है, जो सभी साधक करते हैं। उसका क्रम संक्षेप में **'तोडल तन्त्र'** में बताया गया है। **पिता जी** ने मुझसे ऐसा ही कहा था, जो इस तरह है। **'मङ्गलाचरण'** करके साधक पूजा के प्रारम्भ का **सङ्कल्प** करे। फिर **आचमन** कर **सामान्य अर्घ्य** स्थापित करे। उससे **द्वार-देवताओं की पूजा** कर तीन बार **विघ्नों का वारण** और **भूतों का अपसरण** करे। फिर **आसन की शुद्धि** और **गुरु को नमस्कार, दिग्बन्धन** करे। इसके बाद अपने को अग्नि से वेष्टित कर **'भूत-शुद्धि'** करे। इसके बाद **मातृका, षडङ्ग-न्यास, अन्तर्मातृका-न्यास, मातृका-ध्यान, बाह्य-मातृका-न्यास, पीठ-न्यास, प्राणायाम,** अपने **इष्ट-मन्त्र का ऋष्यादि-न्यास, कर-न्यास, षडङ्ग-न्यास, वर्ण-न्यास, षोढा-न्यास, व्यापक-न्यास, तत्त्व-न्यास, बीज-न्यास, व्यापक-न्यास, मूल-मन्त्र-न्यास** करके **इष्ट-देवता की मानसिक पूजा** करे। इसके बाद **विशेषार्घ्य की स्थापना** कर और **इष्ट-देवता की पीठ-पूजा** कर उसका **ध्यान** करे और **मुद्रा** बनाकर दिखाए। फिर **प्राण-प्रतिष्ठा** कर **मन्त्र से पूजन** करे और **आवरण-अङ्गों के पूजन** की आज्ञा लेकर **अङ्ग-पूजन** आरम्भ करे। फिर **'बलिदान'** और **'होम'** कर **'प्राणायाम'** तथा **'जप'** करे। उसके बाद **'जप-फल'** को अर्पित कर **'प्राणायाम'** करे। इसके बाद **'कवच'-स्तोत्र का पाठ** कर **इष्ट-देवता को साष्टाङ्ग प्रणाम** करे और अपने को **शिव-रूप** मानकर **संहार-मुद्रा से देवता का विसर्जन** करे। **ईशान-कोण** में **उच्छिष्ट चाण्डालिनी को बलि** देकर **अर्घ्य का जल** सिर पर छिड़के और **चन्दन** माथे में लगाकर **नैवेद्य** ग्रहण करे। पूजा का यही क्रम प्रचलित है।

मैंने कहा—यही **'पूजा-क्रम'** तो हम लोगों में भी प्रचलित है। तब आप यह कैसे कहती हैं कि हम लोग **अवधूताचारी** हैं?

उन्होंने हँसकर कहा—इसका ज्ञान इतनी जल्दी तुम्हें नहीं होगा, परन्तु मोटे हिसाब से मैं तुम्हें बताती हूँ। यह तो तुम जानते ही हो कि हमारे मण्डल के लोग दूसरे साधकों के संसर्ग में नहीं आते, परन्तु एक बार **विन्ध्याचल** में मैंने एक **अवधूत** का चक्र देखा। मैं मकान के बाहर एक कमरे में ठहरी हुई थी। **निशा-काल** में उसी मकान के भीतर **अर्चन** होने लगा। आठ-दस साधक उसमें शामिल हुए थे। गर्मी के दिन थे। खुली जगह में बैठकर वे **अर्चन** करने लगे। **अर्चन** क्या था, तमाशा था! न **कलश का स्थापन** था, न **यन्त्र** का। जहाँ तक मैं समझता हूँ, उन्होंने कदाचित् ही **तत्त्वों का शोधन** किया होगा। **शक्ति** भी नहीं थी। **चर्वण-तर्पण** करने के

बाद वे सब लोग उठकर चले गए। मैं उनका सारा कार्य-क्रम अपने कमरे की खिड़की से देखती रही। बाद को मैंने इस पूजन की चर्चा अपने **आचार्य-देव** से की। उन्होंने बताया कि यह **'कुलाचार'** नहीं **'अवधूताचार'** है। हम लोग पूजा के एक भी अङ्ग का त्याग नहीं करते। **कलश, श्री-पात्र** तथा **यन्त्र का स्थापन** अवश्य करेंगे। इसके सिवा बिना **शक्ति** के पूजन भी नहीं करेंगे। **आचार्य-देव** ने मुझसे **'अवधूताचार'** के सम्बन्ध में यही कहा था कि वे **'कुलाचार'** के नियमों का उल्लङ्घन करते हैं। यही कारण है कि हम लोग उनके पूजन में शामिल नहीं होते। उनका **'कुलाचार'** के सम्बन्ध में मेरे पिता-जैसा ही आग्रह रहता है। इसके सिवा वे **भावों** पर भी अधिक जोर देते हैं। वे उन्हें **कुलाचार** का मुख्य अङ्ग मानते हैं।

मैंने कहा—**'भावों'** से आपका क्या मतलब है? और **'कुलाचार'** से उनका क्या सम्बन्ध है?

उन्होंने कहा—यही **पशु, वीर** और **दिव्य-भाव,** जिन्हें सभी साधक जानते हैं, परन्तु हम **कुलाचारी** लोग उन्हें दूसरे ही दृष्टि-कोण से देखते हैं।

मैंने पूछा—वह कैसे?

उन्होंने कहा—**भाव** तीन होते हैं—**१ पशु-भाव, २ वीर-भाव** और **३ दिव्य-भाव। पशुभाववाले शाक्त साधक** का धर्म **'रुद्रयामल तन्त्र'** के उत्तर खण्ड के दूसरे पटल में यह बतलाया गया है—**नित्य-श्राद्ध, सन्ध्या-वन्दन, पितृ-तर्पण, देव-दर्शन, तीर्थ-दर्शन, गुरु का आज्ञा-पालन** करना, **नित्य इष्ट-देवता-पूजन पशु-भाव के धर्म हैं।** जो साधक इन कर्मों को करता हुआ अपना समय व्यतीत करता है, उसको इस **मर्त्य-लोक में सिद्धि** प्राप्त होती है अर्थात् उसका **जीवन सफल** हो जाता है। उसी **तन्त्र** में आगे यह भी लिखा है कि **शाक्त साधक 'पशु'-भाव** में केवल **१६ वर्ष** तक स्थित रहता है। इसके बाद वह **'वीर'-भाव** को प्राप्त हो जाता है। **'वीर'-भाव** की स्थिति उसको **पचास वर्ष** के वय तक प्राप्त रहती है। इसके बाद **'दिव्य'-भाव की स्थिति** आती है। अन्त में **तीनों भावों की एकता** हो जाती है, जिससे **साधक— देवता के रूप** को प्राप्त करता है अर्थात् **'कौल'** हो जाता है। इसी को हम लोग **'कुल-क्रम'** कहते हैं। यही **शाक्त गृहस्थों का 'कुलाचार'** है, परन्तु आज यह बात देश के शाक्तों में कहाँ तक पाई जाती है, यह तुम लोग अच्छी तरह जान सकते हो।

मैंने कहा—**भाभी जी,** आपने खूब बताया! अब मैं **'कुलाचार'** और **'अवधूताचार'** का भेद समझ गया। आप खूब छिपी रहीं। **जगदम्बा** भला करें **सेठ जी** का, जिन्होंने मुझे घर-बैठे दूसरी **भैरवी माँ** प्राप्त करा दी।

उन्होंने हँसकर कहा—कहाँ **भैरवी माँ** और कहाँ मैं! परन्तु इतना कहूँगी कि तुम पर **जगदम्बा** की सचमुच बड़ी कृपा है और मेरी उनसे प्रार्थना है कि तुम्हारी **धर्म-बुद्धि,** दिन-दिन अधिकाधिक विकसित होती जाए और तुम **'कुल-तत्त्व'** के पूर्णज्ञ हो जाओ।

मैंने उठकर **भाभी जी** की पद-धूल अपने मस्तक से लगाई और विदा माँगकर घर चला आया। उस दिन से **भाभी जी** की मुझ पर विशेष कृपा हो गई और जहाँ पहले वे **भौतिक धन** से मेरी सहायता किया करती थीं, वहाँ अब वे **आध्यात्मिक धन** से भी सहायता करने लगीं और उनकी यह सम्पत्ति सचमुच ही अटूट थी। मैंने उससे **असीम लाभ** उठाया।

* * *

भारतीय ज्योतिष विज्ञान

❖ **'कुल-वाणी-रत्न' डॉ० कमलप्रकाश अग्रवाल, श्री-धाम, ४७ हुसैनी बाजार, चन्दौसी (उ०प्र०)**

'ज्योतिष' का संस्कृत में अर्थ—**'ज्योति'** = तारा, **'ष'** = गणक या (भाग्य - वेत्ता) है। **'ज्योति'**-शब्द में **प्रकाश** या **जीवन की महत्ता** झलकती है। **'ज्योतिष'** को **'वेदों' के चक्षु** बताया गया है। जिस प्रकार बाह्य जगत् में प्रकाश दिखाई देता है, उसी प्रकार **'वेदों'** में **'ज्योतिष'** है। **भारतीय दर्शन** का परम मूल सिद्धान्त है कि **"जैसा ब्रह्माण्ड में है, वैसा शरीर में भी है।"** अर्थात् **सौर जगत्** में **सूर्यादि ग्रहों** के विषय में जो नियम हैं, वही नियम **'मानव'-शरीर** में भी कार्य-रत हैं। इसी सिद्धान्त पर **'मानव'-शरीर-स्थित ग्रहों का मानव जीवन पर पड़नेवाले प्रभाव का अध्ययन करने हेतु 'ज्योतिष'-विद्या का प्रादुर्भाव** हुआ है। **'ज्योतिष'**-विद्या में **औषधि, विज्ञान, कला**— तीनों का मिश्रण है।

आचार्य वराहमिहिर के सिद्धान्त के अनुसार **शरीर में 'ग्रहों' का निवास** है। इनके अनुसार प्रत्येक राशि—१ **मेष** (मस्तक), २ **वृष** (मुख), ३ **मिथुन** (वक्ष-स्थल), ४ **कर्क** (हृदय), ५ **सिंह** (उदर), ६ **कन्या** (कटि), ७ **तुला** (वस्ति), ८ **वृश्चिक** (लिङ्ग), ९ **धनु** (जङ्घा), १० **मकर** (घुटना), ११ **कुम्भ** (पिण्डली), १२ **मीन** (पैर)— 'मानव'-शरीर में स्थित हैं। जिस प्रकार बाहर अन्तरिक्ष में **'ग्रह'— बारह राशियों पर भ्रमण** करते हैं, उसी प्रकार **सातों ग्रह— १ सूर्य (आत्मा), २ चन्द्रमा (मन), ३ मङ्गल (धैर्य), ४ बुध (वाणी), ५ गुरु (विवेक), ६ शुक्र (वाणी), ७ शनि (सम्वेदन)** शरीर-रूप **राशियों** पर जाकर अपने गुण के अनुसार प्रभाव दिखाते हैं। **'राहु'** और **'केतु'—'छाया'-ग्रह** हैं। **'सूर्य' की छाया—'राहु'** तथा **'पृथ्वी' की छाया—'केतु'** है। उदाहरण के लिए जब बाहर **'सूर्य'— 'मेष'-राशि पर** होते है, तब 'मानव'-शरीर में **सूर्य का मस्तक पर प्रभाव** होता है। उस समय **'मस्तक'-सम्बन्धी रोग** हो सकते हैं या मनुष्य के मुख पर प्रखरता आ सकती है। ठीक इसी प्रकार जब बाहर **'सूर्य'—'मीन'-राशि** में होता है, तब 'मानव'-शरीर में **'सूर्य' का तलवों पर प्रभाव** दिखाई देता है।

'ज्योतिष'-शास्त्र में **'गुरु-मङ्गल-चन्द्र'** व्यक्ति के बाह्य व्यक्तित्व को, **'शुक्र-बुध-सूर्य'** आन्तरिक व्यक्तित्व को एवं **'शनि'**—अन्तः-करण को प्रभावित करते हैं। प्रत्येक **'ग्रह'** व्यक्ति के पारिवारिक सम्बन्धों को भी बताता है। जैसे—

१ **सूर्य**—आत्मा, पिता, पराक्रम, आरोग्यता, आसक्ति, लक्ष्मी आदि।

२ **चन्द्र**—मन, बुद्धि, माता, राजा की प्रसन्नता, सुख-ऐश्वर्यता आदि।

३ **मङ्गल**—पराक्रम, रोग, भाई-बहिन, भूमि, शत्रु एवं स्वजाति आदि।

४ **बुध**—विद्या, विवेक, मामा, बुद्धि, मित्र, वाणी आदि।

५ **गुरु**—बुद्धि, पुत्र, धन, आरोग्यता और आध्यात्मिक शक्ति आदि।

६ **शुक्र**—आयु, जीविका, मृत्यु का कारण, नौकर और विपत्ति, विपरीत यौन, प्रेम आदि।

७ **शनि**—आयु, अध्यात्म, आजीविका, न्यायालय, कारावास आदि।

८ **राहु**—दादा-दादी, अध्यात्म आदि।

९ **केतु**—नाना-नानी, विदेश-व्यापार, ठेकेदारी, औषधि-कर्म आदि।

'बुध' का नाक (सुगन्ध), **'चन्द्र'** एवं **'शुक्र'** का जीभ (स्वाद), **'सूर्य'-'मङ्गल'** का नेत्रों (रूप), **'गुरु'** का कण्ठ (शब्द) पर और **'शनि-राहु-केतु'** का त्वचा (स्पर्श) पर आधिपत्य होता है। **'जन्म-पत्री'** में जन्म के समय **'चन्द्रमा'** जिस राशि में होते हैं, वही **'राशि'** कहलाती है। प्रत्येक **राशि** के लिए कुछ अक्षर होते हैं, जिनसे कुछ नाम बनाकर बच्चे के रख दिए जाते हैं। **'चन्द्रमा' —'मन'** का प्रतीक है। **'मन'** हमारे शरीर में स्थित 'रक्त-मांस-मज्जा' के संयोग से बनता है। अतः सोया हुआ व्यक्ति जिस नाम से जगे, उसी नाम के प्रथम अक्षर से **राशि** बनती है।

'ज्योतिष' का प्रमाणिक ग्रन्थ **'नारद पुराण'** है। इसमें **''त्रि-स्कन्ध ज्योतिष''** का वर्णन है, जिसमें **१- गणित (सिद्धान्त)** अर्थात् देश, दिशा, काल, ग्रह, उदय, अस्त, ग्रह-पात आदि, **२- जातक (होरा)** अर्थात् राशि-भेद, ग्रहों का विवरण, गर्भाधान, जन्म-मृत्यु, आजीविका, स्त्री, राज्य आदि और **३-संहिता** अर्थात् ग्रहों की गति, चन्द्र-सूर्य-चाल, ऋतु-मुर्हूत, छः संक्रान्ति, मनुष्य के १६ संस्कार, यात्रा, गृह-प्रवेश, वर्षा, ज्ञान आदि हैं। **नारद जी** ने **'काल'-गणना** के लिए इकाई, दहाई, सैकड़ा से चलकर शङ्ख तक माना है। शङ्ख तक पहुँचने के लिए १ के बाद १८ जीरो (१०,००,००,००,००,००,००,००,०००) लगाने पड़ते हैं। **'भारतीय ज्योतिष'** में समय की गणना के सन्दर्भ में— **वर्ष में १२ राशियाँ, १ राशि में ३० अंश, १ अंश में ६० कला, १ कला में ३० काष्ठा** और **१ काष्ठा में १८ निमेष** होते हैं। इससे **'भारतीय ज्योतिष'** का सूक्ष्मतर-से-सूक्ष्मतर **'काल'-ज्ञान** का बोध होता है। उनके गणित में **ज्या, जीवा, वृत, रज्जु** का विवरण भी है, जो आधुनिक समय में **ज्योमेट्री, कैलकुलस, स्टेटिक्स, कोऑरडिनेट, सोलिड, एलजैबरा** में वर्णित है। यह सभी ज्ञान **नारद पुराण** में है।

भारतीय ज्योतिष की सटीक गणनाओं के अनुसार **'सूर्य-बुध-शुक्र'** एक माह में अपनी कक्षा में भ्रमण करते हैं। **'मङ्गल'** डेढ़ माह में, **'गुरु'**—एक वर्ष में, **'शनि'**-अढ़ाई वर्ष में, **'चन्द्रमा'** —सवा दो दिन तक एक **राशि** में रहता है। **'सूर्य'** एवं **'मङ्गल'**-ग्रह **'राशि' के प्रारम्भ** में, **'गुरु-शुक्र'—राशि के अन्त** भाग में विशेष रूप से शुभाशुभ फल देते हैं। **'गुरु'** जिस भाव को देखता है, उसकी वृद्धि करता है तथा जिस भाव में होता है, उसका क्षय करता है।

प्रथम भाव से जातक का मूल स्वभाव का ज्ञान होता है, जिसे **'लग्न'** कहते हैं। **दूसरे भाव** से धन, **तीसरे** से पराक्रम, **चौथे** से सुख, **पाँचवें** से सन्तान, **छठे** से मित्र, **सातवें** से ससुराल, **आठवें** से मृत्यु, **नवें** से भाग्य, **दसवें** से कर्म, **ग्यारहवें** से आय, **बारहवें** से व्यय जाना जाता है। १, ४, ७, १० को **'केन्द्र'** कहते हैं। ५, ९ को **'त्रिकोण'**। २, ८, ११ को **'पणकर'**। **प्रथम भाव** में उपस्थित **'ग्रह'** से मनुष्य का **स्वभाव** व **शरीर की आकृति** जानी जाती है। जैसे **'सूर्य'**—पिङ्गल-वर्ण, लम्बाई-चौड़ाई में

समान देह, अधिक पित्त व थोड़े बालवाला। **'मङ्गल'**—क्रूर-दृष्टि, युवा, उदार, चञ्चल स्वभाव, पतली कमर। **'बुध'**—वाक-पटु, पित्त, कफ, बात—तीनों प्रकृतिवाला हँस-मुख होता है। **'गुरु'**—दीर्घ, मोटा, पीले बाल, पीले नेत्र, श्रेष्ठ बुद्धि, कफ प्रकृति। **'शुक्र'**— सर्वदा सुखी, दर्शनीय, सुन्दर नेत्र। **'शनि'**—आलसी, कपिल वर्ण नेत्र, पतली और लम्बी देह, मोटे दाँत, रूखे रोम, कड़े बाल, बात-प्रकृति। **'राहु'**— नील-वर्ण, लम्बा शरीर, त्वचा रोग से युक्त, कुष्ठी, बुद्धि-हीन, पाखण्डी। **'केतु'**—रक्त-वर्ण, उग्र-दृष्टि, कटु-भाषी, भयङ्कर शरीर, शस्त्र-धारी, पतित, शरीर पर निशान।

प्रत्येक **'ग्रह'** अपने में **सातवें भाव** को पूर्ण दृष्टि से देखता है, परन्तु **'शनि'-सप्तम्** के अलावा **तीसरे** तथा **दशम** को भी देखता है। **'मङ्गल'—सप्तम** के अतिरिक्त **चौथे** तथा **आठवें** को देखता है। **'गुरु'—सप्तम** के अलावा **पञ्चम्** एवं **नवम्** को भी देखता है। इसी प्रकार अन्य ग्रहों की भी कुछ खास दृष्टियाँ हैं।

जब **'जन्म-पत्री'** देखी जाती है, तो कौन-सा **'ग्रह'** किस **भाव** से है इसके अतिरिक्त **'ग्रह'** के **उच्च-नीच, उदय-अस्त,** ग्रह के कितने **अंश** हैं, ग्रह **स्व-राशि** या **मित्र** या **शत्रु-राशि** में है या नहीं, किस **भाव** में कितने ग्रह हैं, उस पर किस-किस की **दृष्टि** पड़ रही है, आदि-आदि बातें देखी जाती हैं। तभी **'फल'** का ठीक निर्णय किया जा सकता है।

'भारतीय ज्योतिष' में **'दशा'** ही **फल-कथन** का आधार है। **'दशा'** के द्वारा प्रत्येक **'ग्रह'** की **फल-प्राप्ति का समय** जाना जाता है। फल का समय **महा-दशा, अर्न्तदशा, प्रत्यन्तर दशा, सूक्ष्म दशा** तथा **गोचर** पर आधारित है। सभी **ग्रह** अपनी-अपनी **दशा** में फल देते हैं। **दशा** कई प्रकार की होती हैं। प्रमुख रूप से **'अष्टोत्तरी', विशोन्तरी** और **योगिनी दशाएँ** उपयोग में आती है। **'फलित ज्योतिष'** में **'विशोन्तरी दशा'** प्रमुख है, क्योंकि इसका फल सत्य, प्रमाणिक और फल-दायी है। **'विशोन्तरी दशा'** में १२० वर्ष परमायु मानकर **ग्रहों की दशा** में वर्ष निर्धारित किए गए हैं, जैसे — (१) **सूर्य**— ६ वर्ष, (२) **चन्द्र**— १० वर्ष, (३) **मङ्गल**— ७ वर्ष, (४) **राहु**— १८ वर्ष, (५) **'गुरु'**— १६ वर्ष, (६) **'शनि'**— १९ वर्ष, (७) **'बुध'**— १७ वर्ष, (८) **'केतु'**— ७ वर्ष एवं **'शुक्र'**— २० वर्ष।

जिस **भाव** में जो **'राशि'** होती है; उस **'राशि का स्वामी'** ही उस **'भाव का स्वामी'** होता है, जिसे **'भावेश'** भी कहते हैं। **शुभ फल** का अर्थ है—आरोग्यता, उन्नति, धन, लाभ, विजय, स्त्री व सन्तान-सुख, भाग्योदय इत्यादि। इसी प्रकार **अशुभ फल** का अर्थ है—धन-हानि, पराजय, बीमारी, तनाव, दुर्घटना, राज्य-दण्ड इत्यादि। **३, ६, ११ वें भाव** में **'पाप'-ग्रह** अच्छा फल देते हैं। **१, ४, ५, ७, १०वें भाव** में **'शुभ'-ग्रह** अच्छा फल देते हैं। **६, ८, १२वें भाव के स्वामी** जहाँ भी बैठते हैं, उस भाव को हानि पहुँचाते हैं। **११वें भाव** में सभी ग्रह शुभ फल प्रदान करते हैं। **'भावेश'** मकान मालिक है और उस भाव में स्थित **'ग्रह'** किरायेदार है। यदि **'भावेश'** —अशुभ है, तो **भाव-सम्बन्धी फल** में बाधाएँ आएँगी। **बारहवें भाव का स्वामी** उसी भाव में शुभ फल देता है। **'अष्टमेश'—'लग्नेश'** भी हो, तो शुभ फल देता है। किसी भाव का स्वामी **केन्द्र** या **त्रिकोण** में हो, तो **'शुभ फल'** प्रदान करता है। **भाव** से सम्बन्धित फल **'ग्रह'** की **दशा-अन्तर्दशा** में मिलता है। जो **'ग्रह'—जन्म-पत्रिका** में जिस घर में हो उसी घर में **'नवांशा'** में भी हो, तो वह **'ग्रह'** बलवान होता है।

जो **'ग्रह'—उच्च, स्व-राशि, मित्र-क्षेत्री, मूल त्रिकोणस्थ, स्व-नवांशस्थ** या **द्रेष्काणस्थ** होता है, वह **'स्थान-बली'** कहलाता है। **'चन्द्र'** और **'शुक्र'—सम-राशि** में और अन्य ग्रह **विषम-राशि** में बली होते हैं। **'लग्न'** में **बुध** और **गुरु, चतुर्थ** में **'शुक्र'** और **'चन्द्र', सप्तम** में **'शनि', दशम** में **'सूर्य'** और **मङ्गल** दिग्-बली होते हैं। रात्रि में जन्म लेने पर **'चन्द्र', 'शनि', मङ्गल** तथा दिन में जन्म लेने पर **'सूर्य', 'बुध', 'शुक्र'—'काल'-बली** होते हैं। **'ग्रह'-वक्री** हो और **बली** हो, तो **'चेष्टा'-बली** होता है। **शनि, मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र, चन्द्र** और **सूर्य** उत्तरोत्तर बली होते हैं। कोई ग्रह शुभ ग्रह से दृष्ट होने पर **दृग्-बली** होता है। **बली ग्रह** से यही अर्थ लगाया जाता है कि **शुभ साथी, शुभ दृष्टि, शुभ राशि** हो। जिस राशि में **'नीच ग्रह'** हो, उसका **स्वामी ग्रह— स्व-राशि** या उच्च का हो, तो **'नीच ग्रह'** की नीचता भङ्ग हो जाती है। कोई **'ग्रह'— वक्री** है, तो उसका प्रभाव विपरीत रहेगा। कोई **'ग्रह'** अस्त है, तो वह **प्रभाव-हीन** हो जाएगा। बाल, युवा, वृद्ध अपनी-अपनी अवस्था अनुसार **ग्रह** फल देते हैं। **'उच्च ग्रह'** अधिक फल तथा **'नीच ग्रह'** दबे हुए रहते हैं।

मनुष्य की अपनी **'जन्म'-राशि** से १२वें भाव में जब पञ्चाग के अनुसार **'शनि'** आ जाता है, तो **साढ़े साती प्रारम्भ** हो जाती है तथा जब **'राशि'** (चन्द्रमा) से तीसरे घर चला जाता है, तब **साढ़े साती समाप्त** हो जाती है। ठीक इसी प्रकार **'राशि'** (चन्द्रमा) से चौथे व आठवें भाव में **'शनि'** रहेगा, तो **ढैया** कहलाएगा। **'शनि'** की इस दशा में ही लोगों का **'छत्र-भङ्ग'** या **'राज-तिलक'** होते देखा गया है।

छटें घर का 'चन्द्रमा'— प्रमेह। **सप्तम का 'मङ्गल'**—अर्शा। **छठे भाव में 'सूर्य-शुक्र'**—पथरी। **'अष्टम' में 'मङ्गल-शुक्र'**—उपदंश। **लग्न का 'सूर्य'**—अर्द्ध शिर-पीड़ा। **सप्तम् में 'केतु'**—पथरी, गुदा आदि में दर्द की सूचना देता है। **लग्न में 'शनि'-'चन्द्र'—** कैंसर को जन्म देते हैं। **पञ्चमेश** व **दशमेश** का सम्बन्ध **प्रबल राज-योग** होता है। **पत्नी का सप्तम् 'सूर्य'**—पति द्वारा अनादर का सूचक है। **द्वादशस्थ 'शुक्र'**—अतुलनीय धनवान एवं लोक-प्रिय बनाता है। किन्तु **षष्ठस्थ 'शुक्र'—** दरिद्र बनाता है। **एक से छठे भाव** तक का फल— जीवन की सम्भावनाएँ और प्रयत्न है, जबकि **सात से बारहवें भाव** तक का फल— जीवन का क्रियात्मक व्यवहार उपभोग, कर्म-फल और उपसंहार है। **एक से छठे भाव में पड़े ग्रह** आयु के उत्तरार्द्ध में और **सात से बारहवें भाव में पड़े ग्रह** आयु के पूर्वार्द्ध में अधिक फली-भूत होते हैं। सांसारिक सुख की सफलता **६, १०, ११वें भाव** पर, सुख की प्राप्ति **४थे भाव** पर, और आध्यात्मिक साधन एवं उन्नति ४, ५, ६ व **१०वें भाव** पर आधारित है।

ईश्वर ने **'ज्योतिष'**-रूपी आँख दी हैं, तो मनुष्य को **मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार** भी दिया है, जिसके आधार पर निर्णय कर मनुष्य **कर्म** कर सकता है या **सकाम अनुष्ठान** भी कर सकता है। यदि मानसिक या चर्म-रोग हो, तो **सोमवार को उपवास** रखें। उसी प्रकार नेत्र-ज्योति को **रविवार,** स्वाद एवं वाणी को **शनिवार,** नासिका एवं गुदा-रोग में **मङ्गलवार,** हस्त एवं पेट रोगों में **शुक्रवार,** लिङ्ग या योनिज रोगों में **गुरुवार** को उपवास रक्खे।

मनुष्य को **भाग्य-वादी** नहीं बनना चाहिए। **कर्म-वादी** ही बनना चाहिए क्योंकि कर्म से ही भाग्य बनता है, कर्म से हाथ की रेखाएँ बनती-बिगड़ती हैं। **ईश्वर पर सदा विश्वास रक्खे और सङ्कल्प-शक्ति** को बढ़ाए।

* * *

परा-वाणी आध्यात्मिक शोध-संस्थान द्वारा प्रचारित उपयोगी प्रकाशन

अलोप-शङ्करी देवी [ललिता पीठ] ४)
तीर्थ-राज प्रयाग विषयक पुस्तक।

अघोरी का उपदेश ८)
अघोर-साधना से सम्बन्धित उपदेश।

अध्यात्म चर्चा ५)
जीवन और उसकी मुक्ति, माया की महिमा, मनुष्य का काष्ठ शरीर, ईश्वर-जीव और माया, जप और ध्यान, प्रणव-महिमा आदि शीर्षकों से पुस्तक की उपयोगिता स्वयं सिद्ध है।

अध्यात्म-योग ५)

अक्षय-वट ५)
प्रसिद्ध अक्षय-वट का शोधात्मक वर्णन।

आगमोक्त योग-साधना ५)
'कुण्डलिनी-योग' की अनुपम पुस्तक।

आनन्द-लहरी १२)
हिन्दी टीका सहित।

आपदुद्धारक श्रीबटुक-भैरव स्तोत्र ६)
श्रीबटुक-भैरव के अष्टोत्तर-शतनाम आदि स्तोत्र।

उपदेश-मुक्तावली १०)

क्या 'राम-चरित-मानस' तन्त्र है? ३०)
'राम-चरित-मानस' की अनूठी समीक्षा।

कमला-कल्पतरु ४५)
माँ कमला की उपासना का विस्तृत विवरण देनेवाला निबन्ध एवं स्तोत्र-संग्रह।

कालिका-कवचम् ३)

काली-पूजा-पद्धति ५५)
दुर्लभ हस्त-लिखित पाण्डु-लिपि के आधार पर।
श्रीआदि-काली-मठ, काशी का प्रसाद।

काली-कर्पूर-स्तवः (सविधि) ६)

काली-कल्पतरु यन्त्रस्थ

काली-तन्त्र (भाषा-टीका-सहित) १२)

काली-नित्यार्चन १०)

काली-स्तव-मञ्जरी २०)
इस नवीन संस्करण में भगवती काली के ३० स्तोत्रादि हैं। प्रायः सभी स्तोत्रों का हिन्दी रूपान्तर भी है।

काली-सहस्र-नाम-स्तोत्र यन्त्रस्थ

कोकिलार्णव तन्त्र (हिन्दी अर्थ सहित) १५)

कौल-विलासः १५)
कौल-धर्म का माहात्म्य।

कौल-कल्पतरु २०)
कौल-धर्म का विवेचन।

कुल-चूडामणि तन्त्र (हिन्दी अर्थ सहित) १५)

गणेश-साधना-सुधा १५)

गङ्गा-यमुना-सरस्वती पूजा-अङ्क ४)

गङ्गा-सहस्र-नाम-साधना ६)

गायत्री-कल्पतरु यन्त्रस्थ

गुरु-तन्त्र (हिन्दी टीका सहित) ६)

गुरु-तत्त्व-दर्शन एवं गुरु-साधना १५)

चण्डी-पुराण (हिन्दी अर्थ सहित) २०)

चक्र-पूजा २५)
'चक्र-पूजा' शाक्तों की सर्व-श्रेष्ठ पूजा है। इसी पूजा के द्वारा शाक्त-साधक अपना इह-लोक और पर-लोक बनाते हैं। शाक्तों की यह पूजा संस्कृत भाषा में ही लिखी मिलती है। इसीलिए हिन्दी में यह पुस्तक प्रकाशित की गई है।

चक्र-पूजा के स्तोत्र १५)
चक्र-पूजा (महा-पूजा) के अवसर पर जिन स्तोत्रों का पाठ साधकों को करना होता है,उन्हें इस पुस्तक के रूप में व्यवस्थित ढङ्ग से संग्रहीत किया गया है।

चण्डी- चरितावली ५)

कल्याण मन्दिर प्रकाशन, अलोपी-देवी मार्ग, प्रयाग-राज (उ० प्र०) ☎ : ५०२७८३

रजि० सं० ए० डी० ६१ जुलाई-अगस्त, २००१ राज० स० ३२६६१/९७

श्रीअरविन्द की पुकार!

"...एक 'आध्यात्मिक आदर्श' ही सदा भारत का विशिष्ट भाव और प्रेरणा-स्रोत रहा है।....यह 'आदर्श' वह आध्यात्मिकता नहीं हो सकती, जो जीवन से मुँह मोड़ती है, बल्कि वह है, जो आत्मा की शक्ति से जीवन पर विजय प्राप्त करती है।....मानवता का रूपान्तरण करना तथा मनुष्य और ईश्वर के बीच परदे को हटाना ही हमारा 'भविष्य का आदर्श' है। हमारे इस 'आदर्श' से ही, जो दिव्य मनुष्यत्व की क्षमता हमारे अन्दर है, उसका जन्म होगा।..."

('स्टैण्डर्ड बेअरर', १९२०)

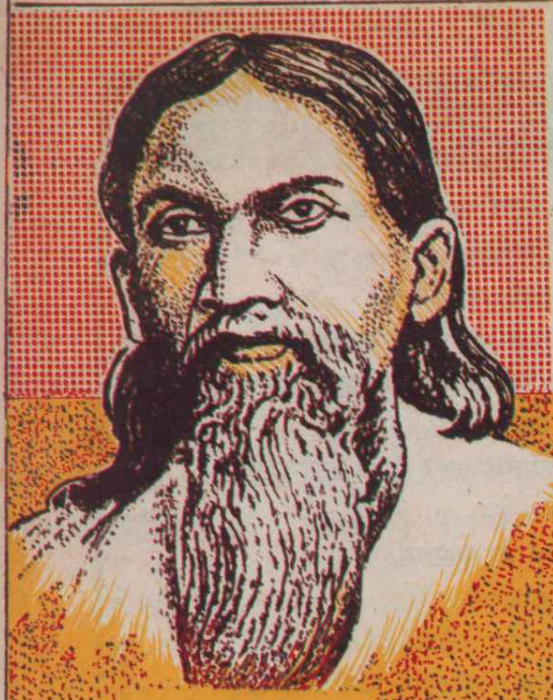

आविर्भाव
१५ अगस्त, १८७२
तिरोभाव
५ दिसम्बर, १९५०

सम्पादक/प्रकाशक/मुद्रक : श्री ऋतशील शर्मा, चण्डी-धाम, प्रयागराज-६ ✆ : ५०२७८३